चुप्पियों की गूंज

प्रो. डॉ. स्वाति चांदोरकर

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Prof. Dr. Swati Chandorkar 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7825-652-3

Cover Design: Deepak Katheria
Typesetting: Manisha Rawat

First Edition: April 2026

उन सभी होम मेकर्स को समर्पित, जो

''कुछ नहीं करती, बस घर में ही रहती है।''

सारांश

यह उपन्यास एक ऐसी गृहिणी की मौन कथा है, जो वर्षों से घर की दीवारों के भीतर अपने अस्तित्व को घुलाती आई है। उसका जीवन बाहर से तो पूर्ण प्रतीत होता है– सुसज्जित घर, हंसता–खेलता परिवार, सामाजिक प्रतिष्ठा, सर्व सुख–सुविधाएँ – पर भीतर एक गहरी रिक्तता जो दिन–ब–दिन बढ़ती जाती है। उसकी घर में उपस्थिति एक अनाम उपस्थिति है। उसके प्रत्येक श्रम को कर्तव्य मान लिया जाता है। धीरे–धीरे वह यह अनुभव करती है कि वह केवल 'पत्नी', 'माँ', 'बहू' है, पर स्वयं 'वह' कहीं नहीं है। रसोई की आँच, बच्चों की परवरिश, रिश्तेदारों की अपेक्षाएँ और पति की महत्वकांक्षाएँ– इन सब के बीच उसका स्वयं कहीं खो गया है और उसका स्वर क्षीण हो गया है।

'चुप्पियों की गूँज' भीतरी संवादों, स्मृतियों और आत्म मंथन के माध्यम से उस मानसिक एकाकीपन को उभारता है और एक दिन वह अपने भीतर छिपी आकांक्षाओं की आवाज सुनती है और यह उपन्यास किसी विद्रोह की नहीं, वल्कि उसके परिवर्तन और आत्म–स्वीकृति की यात्रा बन जाता है। अपने अस्तित्व को पहचान कर नायिका स्वयं के लिए एक नई यात्रा आरम्भ करती है। यह कृति गृहिणीयों के अदृश्य श्रम, मौन संघर्ष और उसके आंतरिक एकांत का संवेदनशील दस्तावेज है। यह उपन्यास अनगिनत होम मेकर्स की समूहिक आत्मकथा बन जाता है।

1

हिमालय! ओह हिमालय! कितना सुन्दर, मनमोहक, अद्वितीय! यह केवल एक पर्वतमाला नहीं। यह अदम्य साहस, स्थिरता और शांति का प्रतीक है। स्मिता उसी हिमालय की ओर एक टक देख रही थी। उसकी बर्फ से ढकी चोटियाँ इतनी आकर्षक थी कि स्मिता की नजरें उससे अलग ही नहीं हो रही थी। स्मिता भागीरथी के निर्मल तीर और शांत वातावरण में एक बड़े से पत्थर पर बैठी अपने पाँव पानी मे लहरा रही थी। वह चुपचाप उस पत्थर पर बैठी हुई थी। सामने हिमालय अपनी सुन्दर श्वेत भव्यता में पसरा था। सूरज की हल्की किरणे जब बर्फ पर पहुँचतीं, तो ऐसा लगता जैसे पर्वत सोने की चादर से ढका है। लेकिन स्मिता को उस सौन्दर्य से ज्यादा उस पर्वत का मौन आकर्षित कर रहा था। एक ऐसा मौन जिसमें ना शोर था, ना दिखावा था। बस एक अडिग उपस्थिति थी। जैसे कोई तपस्वी अपनी साधना में लीन हो।

भागीरथी के पानी की ठंडक और सामने बर्फिली चोटियों की शीतलता मानो स्मिता के सम्पूर्ण शरीर को ठंडा कर रही थी। यह दृश्य उसकी आत्मा को भीतर से पिघला कर शांत कर रहा था। उसकी आंखों में वर्षों से ज़मी हुई नमी अचानक बह निकली। हिमालय ने मानो उसे समझ लिया था। हिमालय जैसे उसे अन्दर बाहर से जानता था। वो उसे कह रहा था कि तुम्हारा मौन तुम्हारी कमजोरी नहीं है। तुम्हारी थकावट केवल तुम्हारे शरीर की नहीं है, आत्मा की भी है और वह समय आ गया है कि तुम खुद की ओर लौट चलो। स्मिता स्थिर, शांत होकर हिमालय से बहुत कुछ सीखने का प्रयास कर रही थी। सारा निसर्ग उसकी आत्मा को भी निर्मल गोद में विश्राम दे रहा था।

दो माह पहले याने पिछले 60 दिनों से स्मिता यह सूर्योदय देख रही थी। सुबह का समय था। बस, सूर्योदय होने ही वाला था। सूर्योदय के पहले उसकी लालिमा बर्फ की सफेदी पर छाई थी। सारा पर्वत

धीरे–धीरे सोने की खदान में परिवर्तित हो रहा था। आज स्मिता साठवें दिन भी उस सूर्योदय के प्रति उतनी ही आकर्षित हो रही थी जैसे पहले दिन। सूर्योदय रोज किसी सुनहरी कविता सा उगता और साँझ किसी पुराने गीत की तरह ढल रही थी।

दो माह पहले, स्मिता यहाँ हर्षिल पहुँची थी। एक लकड़ी के बने, छोटे से घर में स्मिता 'होमस्टे' कर रही थी। कमरा छोटा था पर उसकी खिड़कियों से भागीरथी और हिमालय दोनों ही साफ–साफ नज़र आ रहे थे। हिमालय की गोद में बहने वाली भागीरथी कि वह कल–कल कानों को साफ–साफ सुनाई दे रही थी।

हर्षिल हिमालय की तलहटी में बसा एक छोटा सा गांव था। मिलिट्री की एक कम्पनी के अलावा मात्र 100–150 घरों वाला गांव। इस गांव की सुन्दरता किसी स्वर्ग की कल्पना से निराली नहीं थी। इसे धरती का स्वर्ग कह सकते है।

गांव के चारों ओर घने देवदार के वृक्ष खड़े थे। मानो वो पूरे गांव की रखवाली कर रहे थे। छोटे–छोटे लकड़ी के बने घर और हर घर के सामने सेब का बगीचा। पूरे गांव में पत्थरों की बनी सँकरी पगडंडियां थी। मिलिट्री के वाहनों के अलावा और अन्य धुऐं का जहर फेकती कोई गाड़ियाँ नहीं थी। मुश्किल से गांव में 10–15 मोटर साइकलें थी। पर वह भी यदा–कदा ही हॉर्न बजाती थी। कुल मिला के ये वही वातावरण था, जिसकी तलाश में स्मिता यहाँ आकर रूकी थी। अकेली थी। दिनभर बहुत थोडा या अल्प संवाद घर की स्त्रियों से कर, वह अकेली ही भागीरथी तीरे दिन बिता रही थी।

आसमान के छटाओं के रंग बदलते–बदलते कब सूर्योदय हुआ उसे पता ही नहीं चला। वह बस एकाग्र चित्त से हिमालय को देख रही थी। उस दिन वो केवल चाय नहीं पी रही थी, वह अपनी आत्मा में डूबे वर्षो की उथल–पुथल को धूप में बैठकर शांति से पिघलाने की कोशिश कर रही थी।

अचानक उसके कंधे पर किसीने हाथ रखा। स्मिता घबराई पर अगले ही क्षण में उसे उस हाथ का स्पर्श पहचाना सा लगा। उसने मुड़ कर देखा, ''अरे तुम! और यहाँ। कब आए?'' उसने आलोक को देखकर बड़े आश्चर्य से पूछा। ''रात को ही आ गया था। पर लेट हो गया था,

तो दूसरे कमरे में ही सो गया, सोचा तुम्हारी नींद क्यों खराब करूं? वो सामने वाला होटल है ना, वहीं रूका हूँ।'' आलोक ने अत्यंत धीमे और स्नेहिल स्वर में कहा। आलोक का चेहरा हमेशा की तरह शांत था। उस पर जरा सी भी चिड़चिड़ाहट, उत्सुकता या उतावलेपन का भाव ना था। चेहरा इतना शांत था कि मानो कुछ हुआ ही नहीं था।

आलोक स्मिता के पास आकर बैठ गया। उसने स्मिता के कंधों से ढ़लती हुई पश्मिना उसे ओढ़ाई। उसने सामने रखी चाय की केटली की ओर देखा। स्मिता ने तुरंत घर की ओर आवाज लगाई, ''कंचन एक ग्लास और ले आ बेटा।'' घर की वह छोटी सी गुड़िया एक ग्लास लेकर दौड़ी तो तुरंत स्मिता चिल्लाई, ''अरे कंचन बेटी और थोड़ी चाय भी लेते आना।'' ''जी दादी अभी लाई।'' कहते हुए कंचन तुरंत पलटकर घर की तरफ भागी। आलोक और स्मिता ने मिलकर चाय पी। पर दोनों चुप! कोई संवाद नहीं! स्मिता अभी भी बस हिमालय को ही निहार रही थी। कंचन की लाई हुई दूसरी केटली की चाय भी समाप्त हो गई। धूप आ गई थी। हवा में सूरज से थोड़ी गर्मी हो गई थी। उस गर्मी से मानो स्मिता और आलोक के बीच में चुप्पी की बर्फीली लादी भी थोड़ी पिघलने लगी।

आलोक ने स्मिता के कंधे पर हाथ रखते हुए पूंछा, ''कैसी हो?'' स्मिता ने कहा, ''अच्छी हूँ। बताओं कैसी लग रही हूँ?'' ''तुम्हारे चेहरे पर एक नई चमक दिख रही है। यह एक नए आत्मविश्वास की झलक है। आंतरिक संतोष की भावना ने तुम्हें और भी सुन्दर बना दिया है। तुम बहुत खुश और संतुष्ट लग रही हो।'' आलोक उसकी गहरी आंखो में देखकर बोल रहा था। ''जानती हो, आज तुम बिल्कुल वैसे ही लग रही हो जैसी 40 साल पहले! याद है, जब हम कश्मीर गए थे! तुमने शालिमार गार्डन में वो काश्मीरी कपड़े पहन कर फोटो खिचाई थी। बिल्कुल उतनी ही खूबसूरत तुम आज लग रही हो स्मिता।'' आलोक ने स्मिता की हाथ चूमा। स्मिता की आंखे भर आई। आज कितने सालो बाद आलोक ने उसे चूमा था। उसे लगा, आलोक के छाती पर सिर रखकर, उसकी बाहों में घुसकर रो दूं। पर उसने आपने आप को सम्भाला। वो खडी हो गई। उसके पीछे–पीछे आलोक भी खड़ा हुआ। स्मिता आगे चल पड़ी। आलोक पीछे से उसके कंधों पर हाथ रखते हुए बोला, ''चलो! मैं तुम्हे लेने आया हूँ।''

2

आज किशोरी लाल जी के घर में मानो उत्सव हो रहा था। क्यों ना हो? उनकी लाड़ली बेटी विजयंता का विवाह जो हो रहा था। विवाह समारोह ने घर को पूरी तरह से सजाया था। रंग–बिरंगे लाईट, घर की शोभा और भी बढ़ा रहे थे। मेहमानों का आना–जाना लगा था। सारी सजावट घर के उत्साह और खुशियों को साफ–साफ बयाँ कर रही थी।

पर घर के सारे मेहमानों का ध्यान भी विजयंता ही रख रही थी। वह स्वयं काम में इतनी व्यस्त थी कि उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि ''यही दुल्हन है।'' दोनों हाथ मेंहदी से सजे होने के बाद भी वह पूरे घर में घूम–घूम कर सबको निर्देश दे रही थी।

''अरे ये सामान इधर रखो।''

''खाना बनाने वाले आये कि नहीं?''

''और गद्दों की जरूरत पड़ सकती है भाई।''

सारा कुछ विजयंता ही देख रही थी।

विजयंता किशोरी लाल जी की बेटी थी। आशुतोष उनका बेटा था। वह विजयंता से 04 साल बडा था। आशुतोष ने अभी–अभी बी.कॉम पास कर लिया था और एक छोटी सी नौकरी में लग गया था। किशोरी लाल जी अपना निजी व्यवसाय करते थे। उनका किराने का होलसेल का काम था। काम काफी अच्छा था। पूरे गांव और आसपास के सारे छोटे व्यापारी किशोरी लाल जी के ही परम्परागत ग्राहक थे। गांव में किशोरी लाल जी की अच्छी साख थी। घर में यह केवल तीन ही प्राणी थे। किशोरी लाल, आशुतोष और विजयंता।

किशोरी लाल जी की पत्नी वसुंधरा को परलोक सिधारे अब 06 साल हो चुके थे। वसुंधरा बीमार ही रहती थी। उसके हृदय में छेद था। ज्यादा काम करने पर उसे हाँफी भर आती थी। घर में अक्सर वह बिस्तर पर ही पड़ी मिलती थी। इसलिए विजयंता ने बहुत छोटी उम्र से ही घर चलाना सीख लिया था। बिस्तर पर पड़ी–पड़ी 'आई' उसे बताती जाती थी और विजयंता उसके कहने पर सारा काम फटा–फट किया करती थी।

कहने को तो आशुतोष बड़ा था। पर उसने कभी विजयंता की घर के कमों में मद्द नहीं की थी। किशोरी लाल जी ने भी कभी उसे घर की जिम्मेदारी सम्भालने को नहीं कहां और ना ही आई ने। उसे बस स्कूल, पढ़ाई और फुटबॉल में ही लगे रहना अच्छा लगता था। बड़ा भाई होने के बावजूद वह घर के प्रति हमेशा ही थोड़ा लापरवाह था और छोटी होकर भी विजयंता उतनी ही समझदार और जिम्मेदार थी। घर की सारी परिस्थितियों को वह बखूबी समझती थी और चुपचाप अपने काम किया करती थी। अपनी आई के स्वास्थ्य को लेकर वह सदैव चिंतित रहती थी। उसे अपनी आई से बेहद लगाव था।

विजयंता आठवीं कक्षा में थी तब से घर के सारे काम आई के साथ सम्भाल रही थी। सुबह तड़के उठकर वह रसोई में पहुँचती थी। घर में दिन की शुरूआत उसकी बनी चाय से ही होती थी। चाय बनाने में जरा विलम्ब हो तो कमरे से आवाज आती थी, ''विजू, चल जल्दी कर। मेरा फुटबॉल का समय हो गया है और तुम्हारे चाय के चक्कर में मुझे ग्राउंड पहुँचने में देरी हो रही है। बस सोती रहती है। चल जल्दी से चाय बना और एक पैकेट पारलेजी के साथ चाय कमरे मे ही लेकर आना।'' ''आशु दादा तुम पहले बिस्तर से तो उठो मैं चाय ही बना रही हूँ।'' कहते, विजू उसके कमरे में ट्रे में चाय और पारले जी लेकर पहुँचती थी। एक बार आशु दादा फुटबॉल के लिए निकल गया कि फिर विजू आई और बाबा की चाय बनाती थी। दोनों की चाय बिना शक्कर की जो बनानी पड़ती थी! और फिर अपनी चाय में दो चम्मच शक्कर ड़ालकर खुद अखबारों में डूबकर चाय पीती थी। हर एक घूंट के साथ अखबार पढ़ना उसकी पुरानी आदत थी।

फिर आशु दादा के आने तक सभी के लिए सुबह का नाश्ता तैयार करना पड़ता था। तब तक बाबा स्नान पूजन कर तैयार होते विजू टेबल पर नाश्ता लगा ही लेती थी। आई जरा आराम से ही उठती थी। रात मे सोने के पहले आई रोज विजू को दूसरे दिन के सुबह की सारी तैयारी और काम समझा देती थी। फिर खाना, आशु का डब्बा, खुद का डब्बा तैयार कर वो स्कूल जाया करती थी।

स्कूल में विजू पढ़ने में हमेशा अव्वल ही रही। कभी दूसरे नम्बर पर ना रही। गणित के 100 मे से 100 नम्बर तो कहीं नहीं जाते थे। पर उसे साहित्य में विशेष रूचि रहती थी। अंग्रेजी और हिन्दी दोनों ही भाषाओं पर उसका अच्छा दबदबा था। मोहल्ले की सभी चाची, मौसी, बुआ विजू से स्नेह करते थे। घर से स्कूल के लिए निकलते–निकलते वो सब घरों की हाल–चाल पूछ–पूछ कर आगे बढती थी। विजयंता पूरे मोहल्ले में चलती कम बहती ज्यादा थी– एक चंचल नदी की तरह, जो जहाँ जाती वहाँ जीवन की सरगरमी छोड़ जाती। उसकी हंसी में झरनों की छल–छल और उसकी आँखों में सुबह की पहली किरण की चमक थी। वह एक जीवंत अनुभूती थी– जो हर दिल में उम्मीद की लौ जला देती और हर दिन को उत्सव बना देती। कुल मिलाकर विजयंता एक जीवंतता से भरपूर, होशियार, चुल–बुली, होनहार ऐसी किशोरी लाल जी की लाड़ली बेटी थी। किशोरी लाल जी उसे बेहद प्यार करते थे। उनका कोई काम विजू के बगैर नहीं होता था। और पल–पल में, ''विजू ये कहां है, विजू वो कहां है।'' कहते ही रहते थे। विजू के स्कूल जाने पर आई धीरे–धीरे घर के बाकी काम समेटते–समेटते, रोज ही भगवान के सामने इस चंचल बिटिया के लिए दुआएं मागती थी।

3

खिलखिलाती महिलायें, शोर मचाने लगी, ''चलो–चलो! बारात दरवाजे तक आ गई है।'' बनी ठनी महिलायें, बच्चियां, कुंदते–फांदते दरवाजे की ओर चल पड़ी। सबकी निगाहें सफेद घोड़ी पर बैठे हुए दुल्हे राजा की तरफ थी। दुल्हे राजा बड़े ठाट से घोड़ी पर सवार थे। सफेद शेरवानी और उसपर बांधनी का लाल साफा। गले मे बड़ी भारी मोती की माला और कमर पर लटकी कटार! एडियां ऊची कर कर के महिलायें दूल्हा देखने में व्यस्त थी।

विजू अपने कमरे में लाल साड़ी पहने, गले में सोने का हार, नाक पर सुन्दर नथ, माथे पर सोने का टीका, दोनों हाथों मे दो–दो दर्जन चूड़िया और मेंहदी लगे हाथ लेकर सजी बैठी थी। विवाह के लाल जोड़े में सजी, वह किसी मंदिर की दीपमालिका सी दीप्तिमान लग रही थी। आँखों में संकोच की कोमल छाया और उसके हृदय में सपनों की मधुर गूंज थी। माथे का टीका, हाथ में चुड़ियों की खनक जैसे उसकी भावनाओं का मधुर संगीत रच रही हो। उसके चेहरे की आभा में एक नई यात्रा की आशंका थी और विश्वास की शीतल चमक भी थी। वह सिर्फ एक दुल्हन नहीं थी– वह एक सपना था, जो वर्षों से संजोया गया था; एक पुष्प जो अब किसी और उपवन में खिलने जा रहा था, ससुराल की धरती पर अपने सौम्य स्नेह की वर्षा करने के लिए। विजू अपनी आई की तस्वीर के सामने खड़ी थी। मन बैचेन था, आज आई होती तो! यह विचार उसके मुख पर एक हल्की सी उदासी की लहर छोड़ गया।

आई को गए 06 साल हो गए थे। तब विजयंता ग्यारहवीं मे पढ़ती थी। आई की लम्बी बीमारी ने उसे घर के सारे काम–काज सिखा लिए थे। बीमारी मे उसने अपनी आई की बेहिसाब सेवा की थी। आई की सेवा सुश्रुषा, घर और अपनी पढ़ाई, सबका ताल–मेल बिढाते हुए विजयंता बारहवी बोर्ड परीक्षा अव्वल दर्जे मे पास हुई थी। उसके 86 प्रतिशत

आकर वो अपने सम्भाग में प्रथम आई थी। वह आगे कॉलेज जाना चाहती थी। उसकी इच्छा तो डाक्टर बनने की थी। परन्तु परिस्थिति ने उसका साथ नहीं दिया। आई की बीमारी में खर्चा भी बहुत हो गया था और फिर घर की देखभाल करने वाला अन्य कोई था भी नहीं। उसके दादा ने तो साफ–साफ बोल ही दिया था, ''बाबा, विजू ने बहुत पढ़ लिया अब उसका कॉलेज जाना सम्भव नहीं है। वो घर को सम्भालते हुए प्राइवेट ही पढ़ाई पूरी कर ले। उसे प्राइवेट ही बी.ए. करने दो। वो दिनभर कॉलेज घूमती रहेगी तो घर में कौन रहेगा? और मुझे आगे की पढ़ाई भी तो करनी है। मेरा बी.कॉम. होने वाला है और मैं आगे इन्दौर जाकर एम. बी.ए. की पढ़ाई करना चाहता हूँ।''

किशोरी लाल जी विजयंता को पढ़ाने के पक्ष मे थे। पर आज आशू की बातें सुनकर वो चुप ही रह गए। दूसरे दिन सवेरे, बाबा ने विजयंता को कुछ पैसे दिए और बोले, ''जाओ, तुम जाकर पी.जी. कॉलेज में अपना दाखिला कर दो।'' अपनी प्यारी बेटी के सिरपर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा, ''बेटी तुम्हारा नाम विजयंता है। मैंने तुम्हें यह नाम दिया है। मै. चाहता हूँ, तू जीवन मे सदा विजयंता ही होती रहो। विजयंता याने हमेशा 'विजय पाने वाली'! तुम दादा की बातों में मत आना और अपनी पढ़ाई पूरी कर लो, मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ।''

सरकारी कॉलेज की स्थिति कतई अच्छी नहीं थी। विजू एक प्राइवेट कॉलेज मे पढ़ना चाहती थी। डाक्टरी ना पढ़ने से वह उदास थी और अब विज्ञान विषय का रूख उसने बदल दिया था। साहित्य की शौकीन होने से उसने अंग्रेजी साहित्य विषय चुना और उसके साथ मनोविज्ञान विषय भी चुना। प्राइवेट कॉलेज के नियम और फीस काफी ज्यादा थी और उसे दोनों ही सम्भव नहीं था। आखिर उसने सरकारी पी.जी. कॉलेज में ही अपना दाखिला भर दिया। यहां दोनों फायदे थे। एक तो रोजाना जाने की जरूरत नहीं थी और दूसरी गांव की बेटी की छात्रवृत्ति मिलने से उसे फीस के पैसे नहीं लग रहे थे। घर और पढ़ाई की गाड़ी सम्भालते–सम्भालते बड़ी जिद से विजू ने बी.ए. पास कर लिया था। रूचि उत्पन्न होने से उसने मनोविज्ञान में एम.ए. भी कर लिया था और अब वह एम.एस.डब्लू के प्रथम वर्ष में थी।

4

अचानक बैंड बाजे की आवाज उसके कानों तक पहुंची। विजू की आंखो से दो बून्द आंसू गिरे। एक टक अपनी आई को देखते देखते विजू की आंखे आई की याद से भर आई थी। आंखो के साथ–साथ उसका हृदय भी भर आया था। उसने अपनी आई को प्रणाम किया। ''चलो जल्दी! वरमाला के लिए तैयार हो जाओ।'' बुआ अन्दर आकर जल्दी पाड़ने लगी। ''अरे बुआ जी! बारात तो अभी नाच रही है। जरा तो रूको।'' कहते हुए विजू की मौसेरी बहन नीता ने वहां रखा मेकअप बॉक्स उठा लिया। वह विजू को अब फिनिशिंग टच देने लगी। बिन्दी, गहने, साड़ी, चुनरी, लिपस्टिक सब पर नीता ने पुनः एक बार हाथ घुमाया और हंसते हुए विजू को अपने काजल का काला टीका लगाया और बोली, ''दीदी! जम रही हो! आज तो जीजाजी की खैर नहीं। नजर ना लगे मेरी प्यारी दीदी को।'' वह हंस पड़ी। बुआ जी द्वारचार करने कब की लौट गई थी। अपने आप को आईने में देखकर विजयंता अनायास शर्मा गई।

बाहर लगे शामियाने मे पंडित जी ने माइक पर अपना कब्जा जमा लिया था। ''बेटी को जल्दी लाईए। मुहूर्त टल रहा है।'' पंडित जी पंड़िताई झाड़ने लगे। खिलखिलाती, बातियाती विजू की सारी चचेरी, मौसेरी बहने विजू को लेने अन्दर आई।

विजू के मन मे बहुत सारी भावनाएं उमड़ रही थी। उसका मन खुशी, उत्साह, प्रेम, उम्मीद, घबराहट और थोडे से डर के अनोखे मिश्रण से भरा हुआ था। विजू को यह एहसास हो रहा था कि अब उसके जीवन की एक नई यात्रा शुरू होने वाली है। अपने जीवन साथी, उसके सपनों का राजकुमार आज द्वार पर खड़ा उसका इंतजार कर रहा था। अपने नये जीवनसाथी के साथ बिताने वाले पलों ने अचानक उसके गालों पर मुस्कुराहट लाई। उसके लाली लगे हुए गाल शर्म से और भी लाल हो

गए। उसकी पलके नीचे झुक गई और वह धीरे–धीरे हाथ मे माला लेकर बहनों के घेरे मे से आगे बढ़ने लगी।

बाहर तिरछी नजरों से उसने सजा हुआ मंडप देखा। नए तरह की सारी सजावट की गई थी। उसके बाबा ने बडे शौक से सारा घर सजाया था। जगह जगह दिये, कलश रखे हुए थे। मंच के रास्ते मे सुन्दर रंगोली डाली गई थी। बड़े फानूस मंडप मे लटके हुए थे। जगमगाती रोशनी में उसका अपना आंगन आज स्वर्ग सा सुन्दर लग रहा था। सबकुछ देखते देखते वह वरमाला के मंच पर कब पहुंची उसे कुछ समझ मे ही नहीं आया। दो बहनो ने हाथ पकडकर धीरे से उसे मंच पर दूल्हे राजा के सामने खडा कर दिया।

डरते और शर्माते धीरे से विजयंता ने अपनी पलकें ऊपर उठाई और अपने सपनों के राजकुमार को देखने की कोशिश की। उसे देखते ही उसके दिल में प्यार की नई लहर उमड आई। यह वही था, उसके सपनो का राजकुमार, उसे यह एहसास हो रहा था कि यह वही है जिसके साथ अब उसे अपनी पूरी जिन्दगी बितानी है। अचानक पूरी जिन्दगी के ख्याल ने उसे थोड़ा डरा ही दिया। नया घर, नए रिश्ते, नए लोग और नई जिम्मेदारियों के बोझ ने उसे चिंतित कर दिया। उसके मन मे अनगिनत भावनाएँ उमडी थी। नया जीवन शुरू करने की उम्मीदों के साथ–साथ अपना पुराना घर, बचपन से जुड़े परिवार और पुरानी ढेरसारी यादें, पीछे छोड़ने का दुख भी उसे सता रहा था।

अनिश्चितता और घबराहट के इन भावों में डूबकर उसने कब दूल्हे राजा को माला पहनाई, उसे समझ में ही नहीं आया। तालियाँ और बैंड बाजे की धुन और आसमान में होने वाली आतिश बाजी ने उसे होश मे लाया। आलोक की आँखों से आँखे मिली और वह शर्म से ऊपर से नीचे तक तरर... गई।

मध्य रात्रि तक विवाह की सारी रस्में पूरी हो गई। रस्मों के दौरान तीन बार आलोक ने विजू का हाथ कस के दबाया था। विजू ने मुस्कुरा के आलोक की तरफ देखा। वह भी थोड़ी शैतानी हरकत से मुस्कुराया था। विजयंता सकुंची–शर्माई और सहम गई। उससे पहली बार मिलना मानो किसी पुराने स्वप्न का सजीव होना था। जैसे वर्षों से किसी अनदेखे चेहरे की कल्पना दिल में संजोई थी, और वह सामने आकर सासों में

उतर गया था। उसका हाथ पकड़ना विजयंता को ऐसा लगा जैसे जीवन की अधूरी किताब में अचानक एक पूर्ण अध्याय जुड़ गया हो। उस दिन, पहली बार, किसी के साथ, भविष्य की तस्वीर खुद–ब–खुद बनने लगी थी....... और मन ने धीमे से स्वीकारा– ''यही है, मेरा जीवन साथी, मेरे सपनों का राजकुमार।'' और वह मुस्कुराई!

5

सुबह 04:00 बजे सारी रस्में पूरी हो गई। शादी की अनेक रस्मों में एक रस्म होती है जब एक थाली मे चावल भर दिये जाते है। उसपर सोने की अंगूठी से एक नाम लिखा जाता है और जो नाम दूल्हा लिखता है, वही नाम उस दुल्हन का विवाह उपरांत हो जाता है। आज आलोक यही रस्म निभा रहा था और आलोक ने बड़े–बड़े अक्षरों में लिखा था 'स्मिता'। आज से विजयंता, आई–बाबा की लाड़ली 'विजू' आलोक की 'स्मिता' हो गई थी। नाम देखकर सभी लोगों ने तालियाँ बजाई और ''कितना सुन्दर नाम है'' ऐसा ही कहा। पर विजयंता के मन मे आया, ''विवाह के बाद लड़की अपना सबकुछ छोड़कर ससुराल चली जाती है। क्या उसे अपने आई–बाबा का दिया हुआ नाम भी ले जाने का अधिकार नहीं है?'' इस ख्याल ने अचानक उसे बैचैन कर दिया।

विवाह के बाद नाम बदलने की परम्परा यूँ तो एक सांस्कृतिक रीति प्रतीत होती है, परन्तु इसके प्रभाव उस स्त्री के अंर्तमन तक गहरा उतरते हैं। वह नाम, जिसे उसने बचपन से अपने अस्तित्व की तरह जिया, पुकारा और पहचाना था– अब किसी और पहचान में ढल गया था। यह परिवर्तन केवल अक्षरों का नहीं था, यह उसके सम्पूर्ण 'मैं' के स्वरूप को छू गया था।

यह रस्म सामाज में बदलाव की नहीं, बल्कि एक स्त्री की चुप स्वीकृति की कहानी थी– जहाँ वह मुस्कुराते हुए अपना सबकुछ सौंप देती है, यहां तक की अपनी पहचान भी! फिर वह उस नए नाम को भी स्नेह से अपनाती है, और उसमें भी अपनी अस्मिता की नई परतें बुनती है– यह उसकी आत्मबल और सहनशीलता की सजीव मिसाल होती है जो हर स्त्री को महान बनाती है।

विवाह की सबसे भावुक घड़ी अब आ गई थी। विदाई का वह पल, जब पिता की चौखट से बिदा लेकर बेटी ससुराल की दहलीज में पाव रखती है। यह केवल रस्म नहीं थी– वह एक पिता के हृदय को भेद देने वाला क्षण था।

अब आलोक और स्मिता अपने नए किरदार में याने पति पत्नी के किरदार में थे। विजू की आँखो में खुशी और गम के मिले–जुले आँसू बह रहे थे। एक नया घर, नए रीतीरिवाज, नया माहौल, क्या मुझसे यह सब होगा? क्या आलोक नए रिश्ते को पूरी ईमानदारी और प्यार से निभाने तैयार है? उसके मन में एक अनकहा द्वंद हो रहा था, उसके मन ने उसे सांत्वना दी कि अब उसका जीवनसाथी–आलोक ही उसका सबसे बड़ा सहारा होगा। वह उसे सदा खुश रखेगा।

भारतीय विवाह में विदाई रस्म अत्यंत मार्मिक और भावनात्मक क्षण होता है। और अखिर वह घड़ी आ ही गई! विदाई की घड़ी आई तो विजू पुनः अपने बाबा के साथ, 'आई' की तस्वीर के सामने आकर खड़ी हुई। बाबा के कंधे पर सिर रखकर सिसकियाँ भर–भर कर रोने लगी। पीछे उसका दादा, आशुतोष भी उसके सिर पर बड़े भाई होने का विश्वास भरा हाथ फेर रहा था। उसकी आँखे भी डब–डबा रही थी। बाबा की बाहों में आते ही तीनों ही रो– पड़े– बाबा– विजू– आशु! बाबा की कांपती हथेलियाँ अपने सबसे कीमती खजाने को सौंप रही थी और दादा की चुप्पी में कई अधूरी कहानियाँ थरथरा रही थी।

आँसूओं के बीच दिये गए आशीर्वाद विजू के जीवन पथ को उज्जवल और सुखमय बनाने की कामना कर रहे थे। विदाई केवल एक रस्म नहीं, बल्कि वर्षों की स्मृतियों, संस्कारों और स्नेह का संगम है। आज यह दो परिवारों के मिलन की घड़ी थी। आलोक में भी अपनत्व की भावना जाग उठी। तीनों को रोता देख आखिर आलोक ही बोल पड़ा, ''बाबा, आप क्या मुझे अपना बेटा नहीं मानते? आपको आज मैं वचन देता हूँ कि आपकी लाड़ली की आँखों में कभी आँसू नहीं आने दूंगा। आपकी बेटी अब मेरी जिम्मेदारी है। आप निश्चिंत रहें।'' आलोक ने आगे बढ कर किशोरी लाल जी के आँसू पौछे और विजयंता याने उसकी 'स्मिता' के कंधे पर हाथ रखते हुए प्रणाम करने, दोनों उनके पाव तक झुक गए।

बाहर सजी हुई गाड़ी खड़ी थी। ब्राँड़ न्यू फियट। आलोक स्मिता का हाथ पकड़कर उसे गाड़ी तक ले आया। आगे बढ कर उसने दरवाजा खोला और बड़ी हिफाजत से उसने स्मिता को अन्दर बिठाया। स्मिता ने सभी अपनो को हाथ हिलाते हुये विदाई दी और उसके सारे अपने हाथ हिलाते रह गए। गाड़ी हॉर्न बजाते हुए आगे बढ गई। पीछे दूसरी गाड़ी मे छुटकी और आलोक के माता–पिता बैठ गए।

6

आलोक एक पढ़ा–लिखा, समझदार युवक था। उसने मैकेनिकल इंजिनियरिंग की डिग्री हासिल कर अब वो एक कम्पनी में मैनेजर के पद पर कार्यरत था। कम्पनी भी बहुत अच्छी थी और मल्टीनेशनल के दर्जे में आती थी। आलोक देखने–दिखने में भी अच्छा था। लम्बाई– लगभग 05 फीट 08 इंच, गोरा रंग, घुंघराले बाल और तंदुरूस्त एथलीट का शरीर। मतलब आलोक आकर्षक व्यक्तित्व का धनी था। विजयंता भी उसके अनुरूप ही थी। दुबला–पतला शरीर, सुडोल काया, लम्बे बाल, गोरा रंग, तीखे नाक–नक्स और चेहरे पर झलकती बुद्धिमत्ता। उसकी छवि भी एक नजर में किसी को भी आकर्षित करने योग्य थी। दोनों की जोड़ी, मानो एक दूजे की लिए हो, ऐसी ही थी।

आलोक के घर में उसके माता–पिता और एक छोटी बहन थी। पिता पी.डब्लू.डी. इंजीनियर थे। पिछले साल ही सेवानिवृत्त हो गए थे। माता जी में पूरी 'सास' बनने का जज्बा था और छुट्की ने अभी–अभी बी.ए. पास कर लिया था। वह भी विवाह योग्य थी। आलोक बड़ा बेटा था। शांत स्वभाव का धनी था। कम ही बोलता था। पर खाने–पीने का शौकीन और अच्छे कपड़े पहनने का भी उसे शौक था। अपने काम के प्रति काफी गंभीर था और महत्वकांक्षी भी था।

गाड़ी में बैठे, शहर लांघते ही आलोक ने धीरे से विजयंता के हाथ पर हाथ रखा। विजू ने अपना हाथ छूड़ाने की कोशिश की तो आलोक ने उसका हाथ झट से और कस कर पकड़ लिया और बोला, ''यह हाथ कभी न छोड़ने के लिए ही पकड़ा है, विजू। नहीं सॉरी मेरे लिए तो तुम स्मिता हो।'' दोनों मुस्कुराएँ! बाकी कुछ भी संवाद नहीं हुआ। 100 किलो मीटर का फासला पाटकर उन्हें जाना था। पर दोनों चुप। आलोक ने ड्राइवर से कह कर गाने लगवाए। सफर में विजयंता की कब नीद लगी उसे पता ही नहीं चला। वह काफी थकी भी थी। आलोक ने उसका

माथा अपने कंधे पर रख लिया और अपनी स्मिता के चहरे पर आए बाल पीछे किए। विजयंता की गहरी नींद लग चुकी थी। चेहरे पर थकान झलकने के वाबजूद वह शांत हो कर सो रही थी। मानो एकदम निश्चिंत होकर।

अचानक बैंड–बाजे की आवाज सुनकर उसकी नींद खुली। अपने आपको उसने सम्भाला। एक क्षण उसे वो कहां है, का भान ही नहीं रहा। पर अगले ही क्षण उसकी नजर बाजू में बैठे आलोक पर पड़ी। बगल में आलोक को देख वो पुनः उसी दुनिया में लौट आई। उसने देखा कि उसका पल्लू सिर से गिर गया था। कंधे से भी गिरा देख उसने फट से पल्लू उठाया और अपने बाल ठीक करने लगी। आलोक उसकी घबराहट देखकर मुस्कुराया और बोला, ''चलो स्मिता जी, आपका घर आ गया।''

गाड़ी घर के सामने खड़ी हुई। बहुत सी महिलाएं हाथ में आरती लेकर खड़ी थी। बैंड–बाजे से नए दूल्हा–दुल्हन का स्वागत हुआ। स्मिता उतरे इसके पहले ही उसकी सासू जी जल्दी–जल्दी से उतर कर स्मिता की गाड़ी की खिड़की की तरफ आई और बोली, ''अभी रूकना, मै कहूंगी तभी बाहर निकलना।'' और वो घर की तरफ बढ़ी। वहां खड़ी महिलाओं को वो कुछ–कुछ बता रही थी। छुटकी भी हडबडाहट में घर में कपड़े बदलने पहुंच गई थी। स्मिता ने देखा, सासू जी सारी तैयारियों का जायजा ले रही थी। अन्दर से उन्होंने चावल का नाप लाकर दरवाजे में रख दिया। इतने में छुटकी कपड़े बदल कर फिर फोटो के लिए तैयार नजर आई। सारी तैयारी होने के बाद सासू जी ने छुटकी को अपनी 'भाभी' को लाने का आदेश दिया।

आलोक और स्मिता गाड़ी से निकले। उन पर फूलों की वर्षा हो रही थी। सिर को नीचे झुकायें स्मिता, आलोक के पीछे–पीछे शर्माते हुए आगे बढ रही थी। अन्दर से स्मिता बहुत खुश थी और उसे यह सब बहुत अच्छा लग रहा था। घर के द्वार पर पहुंचते ही सासू जी के कहे अनुसार स्मिता ने चांवल कलश अपने पैरो से औंधा किया। महिलाएं खिल–खिलाई। स्मिता सहमी।

छुटकी ने अपनी भाभी का हाथ पकड़ा और वो उसे घर में ले जाने लगी। घबराती नजरों से स्मिता अपने नए संसार को देख रही थी। बैठक कमरा काफी अच्छा था। घर पूरी सुख–सुविधा युक्त दिख रहा था।

उसके मायके के घर से यह ससुराल का घर ज्यादा आधुनिक था। छुटकी ने स्मिता को सोफे पर बैठने को कहा। वो चुपचाप बैठ गई। महिलाओं ने उसे घेरा और उसे यह एहसास हुआ कि सारी महिलाऐं उसे घूर–घूर कर देख रही है। आलोक अपने कमरे में निकल गया था। छुटकी एक–एक कर सभी से अपनी भाभी का परिचय करा रही थी। सासू जी कुछ काम करते–करते ही फर्मान झाड़ रही थी, ''बहू उठो। वह बड़ी चाची है पैर छुओ।'' स्मिता भी बराबर सासू जी के कहे अनुसार बार–बार उठकर सबके पैर पड़ रही थी। नई बहू से पैर पड़वाना महिलाओं का स्टेटस सिम्बल रहता है। बहू के पांव छूते ही उन्हें 'विश्व विजयी' होने का एहसास होता है। जो उनके चेहरे की मुस्कुराहट में साफ–साफ झलकता है। बेचारी स्मिता उठक–बैठक कर कर थक गई थी।

कुछ समय बाद, इस कोलाहाल से दूर बैठी एक लड़की ने जरा जोर से कहा, ''बहुत हुआ बुआ। अब उसे थोड़ा आराम भी करने दोगी कि नहीं। कितने पैर पड़वाओगी, बेचारी से।'' कहते हुए वो स्मिता के पास पहुंच गई। अपना हाथ आगे बढ़ाते हुए बोली, ''मैं अंजली। हाय! बधाई हो इस प्यारी दुल्हन को। अपने नए संसार में तुम्हारा स्वागत है।'' अंजली सारी महिलाओं से निराली थी। स्मिता की हम उम्र थी। गुलाबी शरारे में वह काफी खूबसूरत लग रही थी। कंधे तक कटे बाल और चेहरे पर झलकती जीवंतता और उसपर गालों में गड्ढे वाली मुस्कान उसे और भी खूबसूरत बना रही थी। छुटकी ने तुरंत ही कहा, ''भाभी, ये अंजली दीदी है। बाबा के एक मित्र अमित अंकल की बेटी है। बाबा के बचपन के दोस्त है अमित अंकल! अंजली दीदी को आप घर की सदस्य ही समझों। दीदी यहां कॉलेज में पढाती थी।''

स्मिता ने सोचा, चलो, एक अच्छी सहेली मिल गई। स्मिता ने भी उसे, ''हाय! मैं विजयंता। पर अब आप लोगों की स्मिता।'' कहते हुए हाथ मिलाया। स्मिता को उठाते हुए वह बोली, ''बहुत हो गया बुआ।'' वो स्मिता को उसके कमरे की ओर ले गई। चार सीढियाँ चढकर आलोक का कमरा था। स्मिता डरते–डरते कमरे में चली गई।

7

उसने इधर–उधर देखा। कमरे में वह अकेली थी। उसके कमरे में घुसते ही अंजली ने बाहर से दरवाजा लगाने की आवाज आई और दरवाजा बंद हो गया। अपने आप को स्मिता ने कमरे में अकेला पाकर कुछ हल्का सा महसूस किया और वह धड़ाम से बिस्तर पर गिर गई। उसने सबसे पहले सिर से चुनरी अलग की और एक–एक कर सारे जेवर उतारने लगी। जेवर उतारते–उतारते उसे उस महिला की टिप्पणी याद आई। उस मोटी महिला ने कहा था, ''कितने तोला सोना दिया है।'' और उसके गले के हार को हाथ से तोलते हुए उसने कहा था, ''यह हार तो बिलकुल भारी नहीं है।'' और इधर–उधर बाकी महिलाओं को देखते हुए वह हंस के बोली थी, ''क्यों असली भी है या नहीं?'' और इस बात पर सारी महिलाऐं फिस–फिसा के हंस दी थी। स्मिता ने उस हार को अपने गले से निकाला और उसने वह हार अपनी हथेलियों पर रखा। उसकी आँखों में आंसू आ गए। वह उसकी आई की निशानी थी। बाबा ने आई के सारे जेवर उसी को दिए थे पर सब में स्मिता का विशेष पसंदीदा था वह हार। वो बचपन में हमेशा अपनी आई को कहती थी, ''आई ये सुन्दर हार मेरा कब होगा?'' और आज वह हार उसका था। आई की तीव्र याद से वो एक क्षण थर्रा गई।

इतने में बाथरूम से आलोक नहाकर बाहर निकला। वह अभी टॉवेल में ही था। स्मिता को देखकर वो भी झटसे वापस बाथरूम में घुस गया। उसकी हडबडाहट देख स्मिता जोर–जोर से हँसने लगी। आलोक को देखकर उसका दुख, क्षण में ही कहां गया उसे पता ही नहीं चला। स्मिता ने जेवर पलंग पर छोडकर, आलोक को उसके कपड़े दे दिए। आलोक ने स्मिता को बाथरूम में खीचा, इतने में बाहर से आवाज आई, ''भाभी! मम्मी जल्दी नीचे बुला रही है। वो कब से तुम्हारा इंतजार कर

रही है।'' आलोक को बाहर ढकेल कर स्मिता अंदर नहाने चली गई और बोली, ''अभी आती हूँ।''

अधिकांश मेहमान अब जा चुके थे। गिने–चुने ही लोग भोजन की फिराख में बैठे थे। स्मिता धीरे–धीरे नीचे उतरी। ''अरे, ये क्या साड़ी पहनी है? जरा ढंग की साड़ी तो पहन के आओ।'' सासू जी ने फरमाया। ''हमने 25 साड़ियां दी है तुम को'' स्मिता को सासू जी का यह टोकना अखर गया। वो वहीं के वहीं रूक गई। इतने में छुटकी सामने आकर स्मिता के साथ कमरे में चली गई। स्मिता को कौन सी साड़ी पहननी है यह चुनाव छुटकी ने ही कर दिया, ''भाभी ये साड़ी पहनो। ये हमने आपके मुंह दिखाई के लिए ही ली थी। अच्छी है ना? पता है 12 हजार की थी।'' स्मिता ने चुपचाप वह साड़ी पहनी और वह दोबारा बाहर आई। भोजन हो गए और भोजन के बाद बचेकुचे मेहमान भी लौट गए। शाम होते होते स्मिता चुपचाप उसके इस नए घर के तौर–तरीके समझ ने की कोशिश कर रही थी। उसने किसी से कोई बात नहीं की। उसे 'बाय' कहकर अंजली भी जा चुकी थी। मगर अंजली से वह एक अच्छी सहेली की उम्मीद लगाई थी। पहली मुलाकात में ही स्मिता को अंजली पसंद आई थी।

अपने कमरे मे लेटे–लेटे आलोक टी.व्ही. देख रहा था। टी.व्ही. तो बहाना था। वह स्मिता के आने का इंतजार कर रहा था। घर के सारे सदस्य अपने–अपने कमरे में चले गए। मम्मी–पापा जी का कमरा नीचे ही था पर छुटकी का पहली मंजिल पर था। तब स्मिता भी अपने कमरे मे आई। उसने धीरे से दरवाजा बन्द किया। उसके हाथ कांप रहे थे। आज आलोक से उसकी प्रथम ही मुलाकात होने वाली थी। उसे अन्दर आता देख टी.व्ही. देखते–देखते ही आलोक ने कहा, ''कितनी देर लगाई। मैं कब से इंजतार कर रहा हूँ।'' ''ऐसे कैसे आती? मम्मी जी, पापा जी सभी तो वहां बैठे थे।'' स्मिता को आलोक ने आगे बढते हुए पलंग तक लाया। ''बैठोगी या सोना चाहोगी?'' आलोक ने काफी सुलझे हुए स्वर में कहा। पलंग पर तकिए से टिककर स्मिता बैठ गई। टी.व्ही. देखते–देखते ही आलोक ने कहा, ''घर पसंद आया?'' ''हां! बहुत सुन्दर है।'' ''और अपना कमरा।'' आलोक हंस दिया। ''वह तो स्वर्ग से भी सुन्दर है।'' स्मिता शर्माते हुए बोली। ''और तुम उस स्वर्ग की अप्सरा।''

कहते आलोक स्मिता के पास पहुंच गया। स्मिता ने अपने अधरों पर किसी के अधरों के दबाव को महसूस किया। स्मिता लज्जा, संकोच, पुलक– न जाने कितनी भावनाओं से ढक गई। एक विचित्र सी मादकता उसके शरीर के रोम–रोम को पुलकित कर गई। आलोक ने स्मिता के आँखों पर एक हाथ रखते हुए उसके सामने हवाई जहाज की 02 टिकटें रख दी और स्मिता को बोला, ''आँखे खोलो। देखो मेरी तरफ से तुम्हारे लिए यह तोहफा'' वह दोनों मधुचन्द्र के लिए कश्मीर जाने वाले थे। स्मिता की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। उसने खुशी–खुशी से आलोक के गालों को चूमा और वह अचानक पानी–पानी हो गई।

8

अगले ही दिन से दोनों काश्मीर जाने की तैयारी में लग गए। आलोक ने अपनी छुट्टी भी बढ़ा ली थी। अगले एक सप्ताह दोनों काश्मीर में, एकांत में एक दूजे के लिए समय बिताने वाले थे। काश्मीर तो धरती का स्वर्ग है। यहाँ हनीमून का स्मिता ने तो कभी ख्वाब में भी नहीं सोचा था। उसने यह महसूस किया कि काश्मीर की पहाड़ियों का सौन्दर्य किसी जादुई दुनिया से कम नहीं था। वहां आलोक ने एक खूबसूरत हॉऊस वोट में रूकने का इंतजाम कर लिया था। श्रीनगर की वह आकर्षक झील, वह शिकारे की सवारी और हॉऊस वोट में रहने का वह परम आनन्द। डल झील की शिकारे की धीमी लहरों पर हल्के–हल्के ड़ोलती, हॉउस बोट! सबकुछ समय को थाम लेने वाला सा! आलोक और स्मिता दोनों ही एक दूसरे में खो गए थे। दोनों ने प्राकृतिक सुन्दरता और बर्फ से ढकी पहाड़ की चोटियों, हिमशिखरियों, ऐसे प्रतीत होती जैसे आकाश ने अपने आंचल में सफेदी का अमृत समेट रखा है। इनको साक्षी मानते हुए जीवन भर एक दूसरे का साथ निभाने की कसमे खाई। ट्रेकिंग, घुड़ सवारी, गोंड़ोला राईड़ और स्मिता ने जो जो इच्छा व्यक्त की, आलोक ने हसंते–हसंते उसे पूरा किया। दोनों बहुत खुश थे।

स्मिता अपने दिल में कई छोटे–बड़े स्वप्न देख रही थी। आलोक के घर से उसे अपनेपन की अभिलाषा थी। आलोक ऐसा ही था, एक ऐसा जीवनसाथी जो उसके मन की बात बिना कहे ही समझ जाए। उसे यह विश्वास था कि आलोक उसे अपने मन के अनुसार जिन्दगी जीने के सारे अवसर दे। अपनी पढ़ाई या रूचियों को आलोक आगे बढ़ा दे। स्मिता एक ऐसे परिवार का स्वप्न देख रही थी, जहाँ वो बेटी की तरह नहीं बल्कि बेटी बन कर जिये।

मगर फिर भी स्मिता के मन में एक बात खटक रही थी और आखिर उसने आलोक को कह ही डाला। आलोक के सीने पर सिर

रखकर स्मिता बोली, ''एक बात कहूँ, तुम्हे बुरा तो नहीं लगेगा?'' ''कहो, क्या बात है?'' ''जब हम निकल रहे थे, तो माँ जी की वह बात मुझे कुछ अच्छी नहीं लगी। उन्होंने मेरे सारे जेवर खुद रख लिए और वह बोली कि इन की कीमत से ज्यादा तो हमारा खर्चा हुआ है। सच कहूँ आलोक, मेरे पिता के पास जो कुछ था, उन्होंने मुझे दिया। मुझे जेवरों से प्रेम नहीं है। पर वह मेरी आई की निशानी है और मैं उन्हें सदा अपने पास रखना चाहती हूँ।'' स्मिता की भरी हुई आँखे पोंछते–पोंछते आलोक ने बड़े धीर–गंभीर स्वर में कहा, ''स्मिता, माँ वैसे दिल से बहुत अच्छी है। मानता हूँ जरा मुंह फट है। घर वापस जाकर मैं उनसे बात करूँगा और वह जेवर लेकर तुम्हे दे दूंगा। तुम कतई उदास मत होना। मैं तुम्हारी भावनाऐं समझता हूँ।'' ''आलोक, मैने अपनी आई को बहुत छोटी उम्र में खोया है। मैं माँ जी को भी अपनी आई ही मानती हूँ। आज तुम्हे वचन देती हूँ, कभी भी मैं उनका अनादर नहीं करूंगी। मैं कभी उनको पलट कर जवाब भी नहीं दूंगी और मनोभाव से उनकी इज्जत करूंगी।'' स्मिता का यह उत्तर सुन आलोक को बड़ी राहत आई।

वह अपनी माँ को अच्छे से जानता था। घर में पापा जी की कभी कुछ भी चली न थी। वह प्रथम श्रेणी के अधिकारी रहे थे। पर घर में हमेशा उन्हें दोयम दर्जे का ही मान मिला था। माँ बहुत जिद्दी और हटेली थी। पापा जी ने तो घर में कुछ भी बोलना ही छोड़ दिया था। अब रिटायरमेन्ट के बाद वह अक्सर सुबह खेलने के बहाने क्लब जाते थे। सुबह 10:00 बजे तक आकर पेपर पढ़ते थे। फिर स्नान और 02 घंटे की पूजा। उन्होंने स्वयं को इतना नियमित बना लिया था कि माँ जी से उलझने को उनके पास कोई टाईम ही नहीं था। आलोक यह भी समझता था कि उसकी छोटी बहन भी बिलकुल माँ की कॉर्बन कापी थी। उन्हीं के जैसी जिद्दी और हटेली। जितना आलोक शांत था वह उतनी ही मुंह फट थी। अब सबसे ताल–मेल बिठाकर गृहस्थी चलाना आलोक के लिए एक नई चुनौती से कम नहीं था। पर आज स्मिता की बात सुनकर उसे बहुत हल्का महसूस हुआ। एक दूसरे की बाहों में बाहें डाल घुमते–फिरते दिन कैसे हवा हो गए दोनों को पता ही नहीं चला और दोनों वापस घर लौट आए।

आलोक आज से अपनी छुट्टियाँ खत्म कर वापस ऑफिस ज्वाइन कर रहा था। अब दिन भर स्मिता को घर में अकेली छोड़ना, उसे भी थोड़ा अटपटा लग रहा था। आलोक को सुबह 08:30 तक निकलना पड़ता था और लौटने का कभी कोई समय तय नहीं रहता था। कभी 07:00, कभी 08:00 तो कभी कभी वह 09:00 बजे तक लौटता था।

आलोक तैयार हो गया। स्मिता भी किचन में पहुँच गई थी। अन्दर मम्मी जी कुछ नाश्ता बना रही थी। स्मिता को किचन में आते देख वह बोली, ''आईए बहुरानी! पर हमारे घर में तो नाश्ता सुबह 07:30 तक बन ही जाता है। उसके लिए सुबह 06:30 बजे से मुझे ही लगना पड़ता है। आलोक 08:15 तक चला भी जाता है और पापा जी को भी क्लब जाना होता है।'' ''जी! कल से मैं जल्दी आऊंगी मम्मी जी।'' स्मिता ने विनम्र भाव से कहा और वह टेबल पर प्लेट लगाने लगी। इतने में छुटकी ने आकर लगी–लगाई सारी प्लेटें उठाते हुए कहा, ''यह नहीं। नाश्ते के लिए यह लाल फूलों की प्लेट ही लगती है बहूरानी।'' 'बहूरानी' शब्द पर उसने एक तंज सा कसा था, बिलकुल अपने माँ के स्वर में। स्मिता कुछ न बोली। चुपचाप खड़ी रही। इतने में आलोक आया और छुटकी को हंसते हुए बोला, ''छुटकी, अब तुम्हारी जिम्मेदारी है अपनी भाभी से दोस्ती करने की।'' छुटकी ने कोई जवाब नहीं दिया। उन माँ–बेटी की यह टिप्पणियाँ स्मिता को अखरी तो थी फिर भी उन्हें नजरांदाज करते हुए स्मिता आलोक के बाजू में नाश्ता करने बैठ गई।

आलोक दफ्तर चला गया। स्मिता को अचानक एकदम अकेला सा महसूस होने लगा। वह चुपचाप वहाँ रखा अखबार उठाकर अपने कमरे में चली गई। उसका मन तो हो रहा था कि अखबार के साथ एक प्याला चाय भी मिले। पर वह चुपचाप कमरे में निकल आई। पापा जी भी क्लब के लिए निकल गए थे। छुटकी अपने कमरे में ही टी.व्ही. को देखकर योगा करने लगी और मम्मी जी, बैठक कमरे में सोफे पर बैठकर फोन पर बाते करने लगी, ''अरे, क्या पता अब भाग्य में क्या लिखा है? अभी तो बहू नई–नई है तो ठीक है। देखो ना मैंने नाश्ता बनाया और वह खा–पीकर अपने कमरे में चली गई और मैं यहां अकेली बैठी हूँ। आज कल की यह लड़कियाँ ना! कुछ मत कहो इनके बारे में मीसेस शर्मा!'' वह इतनी जोर–जोर से बोल रही थी कि शायद स्मिता को ही सुना रही

थी। पर स्मिता ने आदत के अनुसार अपना सारा ध्यान अखबार में लगाने की पूरी कोशिश की।

समय सदा ही पंखो पर सवार रहता है। देखते—देखते स्मिता की शादी को 06 माह बीत गए। अब वह घर के सारे काम करने लगी थी। लेकिन केवल अपनी सास के आदेशानुसार! सास का प्रभाव स्मिता के वैवाहिक जीवन में गहरे और अनेक रूपों में उतर रहा था। उसके हर बात में सासूजी का हस्तक्षेप रहता था। उनके शब्द कभी मार्गदर्शन नहीं बन सके, हमेशा आदेश ही देते रहे। अनजाने में वो स्मिता के मन पर बोझ ड़ालते रहे। उनकी स्वीकृति और ममता स्मिता के आत्मविश्वास को पंख दे सकती थी पर ऐसा कभी हुआ नहीं! साँस की कठोरता स्मिता को एक अनदेखी कैद सी लगने लगी। स्मिता के ससुराल में 'माँ जी' का स्थान शासक के रूप में था। घर का प्रत्येक निर्णय उनकी मुहर के बिना अधुरा था। स्मिता का मन कभी अपनी बात कहने तरस जाता था पर सासूजी के सामने भावनाऐं बंधक बन जाती थी।

स्मिता चुपचाप रहकर सभी काम खुद करती थी। सुबह का नाश्ता, फिर आलोक का डिब्बा और फिर खाने की तैयारी। वैसे बाकी खाना बनाने महाराज आता था। वह किचन के अन्य काम भी करता था। पर आजकल सासू जी का कहना था कि खाना तो हम नौकरों के हाथों का ना खाएंगे। यह सुनकर महाराज की सहायता लेते हुए स्मिता पूरा खाना बनाने लगी थी।

छुटकी की तो अपनी अलग ही दुनिया थी, अलग राग थी। वह घर में तो रहती थी पर अपनी भाभी की उपस्थिति से उसे कोई लेना देना नहीं रहता; ना स्नेह से बात, ना अपनत्व का कोई इशारा। उसकी यह उदासीनता, स्मिता के मन में एक अनकही कसक छोड़ जाती थी। किसी भी प्रकार की गलतफहमियों का जाल ना बुने, इसलिए स्मिता भी उससे दूरी बनाऐं रखती थी।

दिन भर छुटकी फैशन, टी.व्ही. और सहेलियों में ही व्यस्त रहती थी। उसमें कभी स्मिता ने पढ़ने की ललक नहीं देखी। हालाकि वह अपने बी.ए. पास होने का डंका बजाती रहती थी। पर उसने आगे कुछ पढ़ने की ललक कभी ना दिखी। वह अपनी भाभी से भी कम ही बात करती थी। घर में केवल पापा जी थे, जो स्मिता के बारे में स्नेहिल भाव

रखते थे। वह स्मिता के लिए अदृश्य सहारा बन गए थे। सुबह की चाय पर उसका हाल पूछा करते थे और दिन भर हुई घटनाओं पर भी चर्चा करते थे। अपनी हल्की मुस्कान के साथ उनका स्मिता का हौंसला बधां देना– स्मिता के मन में उनके प्रति गहरी सुरक्षा और सम्मान की भावना जगाता था।

स्मिता पढ़ने की शौकीन थी। ज्वलंत विषयों पर चर्चा करना उसे अच्छा लगता था। मेकअप, फैशन, टी.व्ही. और गॉसिप से वह हमेशा ही दूर रहती थी। बस दो दिन में एक बार वह अंजली को जरूर फोन लगाती थी। दोनों में खूब गप्पें होती थी। स्मिता को अंजली से बात करना अच्छा भी लगता था। अंजली कॉलेज में प्रोफेसर थी, बुद्धिमान थी और निडर और खुले विचारों की थी। अंजली की बातों में औपचारिकता नहीं थी। उसकी उपस्थिति स्मिता के लिए सहारा बन गई थी। उसकी मुस्कान में भरोसा था। उसका और स्मिता का रिश्ता शुरूआत से ही गहरा होता जा रहा था।

और आलोक! स्वभाव से सहज और प्रेमिल था, परन्तु उसकी आँखों में हमेशा एक दूर का लक्ष्य चमकता रहता था– मानो जीवन एक अनवरत दौड़ है और उसे हर हाल में यह दौड़ जीतना है। महत्वकांक्षा की आग उसके मन में निरंतर जलती रहती। कई बार वह देर रात तक काम में डूबा रहता, तो कभी छुट्टी के दिन भी केवल अपने भविष्य की योजना और उन्नति की ही बाते किया करता था। स्मिता समझ रही थी कि उसकी उन्नति में, उसके परिवार की उन्नति है पर कभी–कभी उसे लगता था कि वह अपने पति को महत्वकांक्षा की दौड़ और दुनिया की आपाधापी के हवाले खो रही है। आलोक को स्मिता की ना तो मन की बाते सुनने का समय था और ना ही घर की परिस्थितियों को देखने का। वह बड़ी शिद्दत से अपने सपनो का पीछा कर रहा था और स्मिता के जीवन के रंगीन सपने बहुत पीछे छुटते नज़र आ रहे थे।

आलोक अब अपनी महत्वकांक्षाओं में इतना डूबा था कि सिवाए–मीटिंग्ज, प्रोजेक्टस् और डेडलाइन के अलावा, स्मिता से बात करने उसके पास शब्द ही नहीं थे। वह स्मिता के भीतर छुपी भावनाऐं देखने में सक्षम ही नहीं था। अब दोनों के बीच संवाद औपचारिकताओं में सिमट गया था। स्मिता चाहती थी कि कभी वह उसके साथ समय

बिताये। एकांत में! आलोक उसका हाथ थामे और उसकी गहरी आँखो में झांके। यह कहते हुए, ''स्मिता तुम केवल मेरी हो और मैं केवल तुम्हारा।'' लेकिन आलोक अब समय के आगे दौड़ने के प्रयत्नों में लगा एक ऐसा मुसाफिर हो गया था जिससे भावनाऐं मीलों दूर पीछे छूट गई थी। उपेक्षा की यह चुप्पी अब शब्दों से परे एक कराह बन चुकी थी जिसे स्मिता रोज मुस्कान के पर्दे में छुपा देती थी।

अब कुछ भी पहले जैसा नहीं था। ना वह बिन बात की मुस्कुराना, हंसना–खिलखिलाना, ना वह संवाद और ना वो प्रेम! स्मिता समय की जंजीरों में बंधकर एक ऐसे जीवन की कैदी बन गई थी, जिसमें आलोक की महत्वकांक्षाओं की गूंज तो थी, पर स्मिता की अपनी आवाज़ नहीं थी। वह रोज आलोक को जल्दी में, सूट–बूट, टाई लगाकर जाते देखती थी। उसकी आँखों में सफलताओं के सपने तो थे किन्तु उन सपनों में स्मिता का कोई अक्श नहीं था।

स्मिता को अक्सर लगता था कि आलोक कभी उसकी आँखों में झांककर पूछे, ''तुम कैसी हो।'' पर आलोक के लिए अब यह सारे बेतुके सवाल थे। इन छोटे–छोटे सवालों के लिए आलोक के पास ना तो समय था और ना ही उसकी जीवन की प्राथमिकताओं में कोई जगह!

स्मिता की सासूजी समाज में अपना मान बढ़ाने स्मिता की भरसक प्रशंसा जरूर करती थी पर अक्सर एक विशेष प्रकार की मिठास घोलकर कहती थी, ''हमारी बहू तो घर की लक्ष्मी है। जब से वह घर में आई है, हमारे घर में रौनक छा गई है।'' उनकी इस तारीफ में स्मिता को अपनापन कम और प्रदर्शन अधिक साफ–साफ समझ में आ रहा था। लेकिन वह समझती थी कि सासूजी के लिए यह प्रशंसा एक सामाजिक आभूषण था, जिसे पहनकर वह अक्सर पार्टियों में अपने सम्मान की ऊचाईयां नापती थी।

स्मिता एक अधूरी किताब हो गई थी, जिसके पन्ने पढ़ने के लिए कोई तैयार नहीं था। वह उस किताब के जैसी ही थी जिससे कोई पढ़ता नहीं है पर सजाने के लिए जिससे अक्सर घरों में रखा जाता है।

9

एक दिन स्मिता ने आलोक से कहा, ''मैं दिनभर घर में अकेली सी महसूस करती हूँ। सोचती हूँ यहां कॉलेज में एडमिशन लेकर अपना एम.एस.डब्लू पूरा करूं। यूनीवर्सिटी भी वही है। आसानी से यहां मेरा एडमिशन हो जाएगा।'' आलोक ने कुछ काम करते–करते ही कहा, ''मम्मी से पूछता हूँ।'' आलोक का यह रवैया स्मिता को बड़ा आश्चर्यजनक लगा। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि आलोक ऐसा जवाब देगा। दूसरे दिन सुबह नाश्ते के पहले स्मिता ने पुनः रात की बात दोहराते हुए कहा, ''पूछो ना! अभी एड़मिशन हो रहे है।'' अंजली से बात कर स्मिता ने सारी पूछताछ कर रखी थी। उसी के कॉलेज में एम.एस.डब्लू. में सीटे भी रिक्त थी। स्मिता कॉलेज जाकर अपनी पढ़ाई पूरी करना चाहती थी। पर आलोक के इस ठंडे जवाब ने उसे डराया और सशंकित भी कर दिया।

नाश्ता टेबल पर आलोक ने अपनी माँ से कुछ भी ना पूछा। फटा–फट नाश्ता कर वो बहुत जरूरी काम का बहाना देकर जल्दी–जल्दी ही निकल गया। रात को स्मिता के पूछने पर उसने, ''सुबह काम की थोड़ी जल्दी थी सो निकल गया'' कह कर बात को टाल दिया। स्मिता का मन मुरझा गया। उसे रोना आ गया। रात को करवट बदल कर वह चुपचाप आंसू पोंछती रही।

उसके जीवन में रसोई और घर काम यही नियति थी, ऐसा उसे लगा। आई के घर में भी, हमेशा सुबह से शाम घर के प्रत्येक सदस्य की वह सेवा ही करती रहती थी। भाई ने तो उसके कॉलेज जाने का भी विरोध कर लिया था। आखिर विजयंता ने सरकारी कॉलेज जा कर, परिस्थितियों से समझोता करते हुए अपनी पढ़ाई पूरी की थी। लेकिन तब बाबा ने उसका साथ दिया था। और आज वह अपने पति के साथ की अपेक्षा कर रही थी। पर वो भी आज बिना कुछ कहे ही सो गए थे।

आलोक का पीठ फेरे सोना उसे अच्छा नहीं लग रहा था। स्मिता ने भी चुपचाप पीठ फेर ली थी।

एक हफ्ता बीत गया पर आलोक ने अपनी माँ से कुछ भी बात नहीं की। स्मिता उसके बात करने का रोज इंतजार करती रही। आखिर एक दिन स्मिता के सब्र का बांध भी टूट गया। सुबह–सुबह नाश्ते की टेबल पर बैठे स्मिता ने कहा, ''सुनिए, आज 10:30 बजे मुझे जरा बाहर जाना है।'' ''तुम्हे? कहाँ?'' आलोक ने बड़े आश्र्चय से पुछा। सब की निगाहें स्मिता पर थी। वह बोली, ''आज एडमिशन की आखिरी तारीख है। मैंने टी.सी. बुलवा लिया है। मैने यहां महिला महाविद्यालय में अपना दखिला करने का मन बना लिया है। मैने एम.एस.डब्लू की पढ़ाई जारी करने का विचार बनाया है।'' सब अवाक रह गए। आलोक का हाथ मुंह के सामने और मूंह खुला का खुला रह गया। सासू जी तो 'हूँ..' कहकर टेबल से उठ गई। पापा जी 'गुड' बोलकर रोज की तरह क्लब निकल गए। अन्दर से दौडती छुटकी आई और बोली, ''क्या, तो तुम कॉलेज जाओगी भाभी? फिर घर का क्या? मै तो दिनभर व्यस्त रहती हूँ और अब माँ को सारा काम करना पड़ेगा क्या? आजकल माँ के घुटने काफी दुखते है। वह ज्यादा देर तक खड़ी नहीं रह सकती।'' आलोक ने कुछ भी प्रतिक्रिया देना या बोलना उचित नहीं समझा। जल्दी–जल्दी नाश्ता निपटा कर वह भी चुपचाप निकल गया। आज उसे दरवाजे तक छोड़ने स्मिता भी नहीं पहुँच पाई। ऐसा पहली बार ही हुआ था। आलोक के निकलते ही स्मिता ने चुपचाप रसोई का सारा काम निपटाया। वह तैयार हो रही थी कि अंजली ने आकर स्मिता को आवाज दी, ''चलो जल्दी। आई एम हियर डियर।'' स्मिता दौडकर आई। ''सारे पेपर्स रख लिए?'' अंजली ने पूछा'' ''जी।'' कहते हुए स्मिता अंजली के साथ गाड़ी में बैठ गई। मन में घबराहाट जरूर थी पर आत्मविश्वास से ओत–प्रोत वह निकल गई थी।

घर में एक अजीब सा तनाव छा गया। सासू जी फुनक कर कमरे में बैठी। छुटकी माँ के मजे ले रही थी, ''और बिठाओ अपनी लाड़ली बहुरानी को सिर पर।'' आलोक अपनी माँ का फोन भी उठा नहीं रहा था। दिनभर मम्मी जी कई बार आलोक को फोन लगा चुकी थी।

स्मिता एडमिशन कर लगभग ढाई बजे घर लौटी। देखा, तो टेबल पर बैठकर पापा जी अकेले खाना खा रहे थे। जल्दी–जल्दी में सारे कागज कमरे मे रखकर स्मिता टेबल पर पापा जी को खाना परोसने को

आगे बढी। स्मिता ने पूछा ,''मम्मी जी?'' पापा जी मुस्कुराकर तनाव भरा चेहरा दिखाते हुए बोले, ''माँ–बेटी को आज भूख नहीं है।'' और वह अपना खाना खाते रहे। पर स्मिता को देखकर बोले, ''हो गया काम? अच्छा है बेटा! यहाँ की बातों को छोड़ो। तुम अपनी पढाई पर ध्यान देना।'' उनकी यह बात सुनकर स्मिता को बड़ी राहत महसूस हुई। उसे अपने बाबा की याद आई और ''जी पापा जी'' कहते हुए स्मिता ने उनके पांव छुए। बाकी दिनभर सन्नाटा ही छाया रहा।

स्मिता को आलोक से इस प्रकार के व्यवहार की बिलकुल भी अपेक्षा नहीं थी। उसका यह रवैया देख स्मिता दुखी हो गई। आलोक स्वयं पढ़ा–लिखा और खुले विचारों का था, ऐसा स्मिता को लग रहा था। वो चाहता तो वो स्मिता का साथ देकर अपनी माँ को समझा भी सकता था। पर इस बात से स्मिता दुखी हुई कि आज उसने उसके पक्ष में एक शब्द भी नहीं बोला। दोनों ने चुपचाप बगैर बात किए भोजन किए। स्मिता ने मम्मी जी को कमरे में ही थाली दे दी थी। उन्होंने भी आज मौन साध लिया था और अपने ही कमरे में दिनभर बैठी रही। छुटकी ने तो पास की होटल 'दिल्ली दरबार' से अपना खाना बुलवा लिया था और वह कमरे में दूरदर्शन का नया डेली सोप देखते–देखते अपनी माँ के हडताल का समर्थन कर रही थी। आज उसने नया सिरियल चालू किया, 'सास, बहू और साजिश' वह कमरे से माँ चिल्लाते हुए बोली, ''माँ, सास, बहू और साजिश रिलीज हो गया है। तुम भी टी.व्ही. ऑन करो ना। ये उसका सीजन टू है।'' और वो हंस दी।

आलोक खाना खा कर उठ गया। स्मिता ने अकेले ही पूरा किचन और डायनिगं समेट लिया। वह भी आज बहुत उदास थी। उसके मन में, क्या ठीक, क्या गलत का द्वंद चल रहा था और उसका मन किसी निष्कर्ष पर नहीं आ पा रहा था। कमरे में पहुंची तो आलोक सो गया था। पर स्मिता ने मन बना ही लिया था कि उसे एम.एस.डब्लू पूर्ण कर लेना है। उसका दिल उसे यह समझा रहा था कि धीरे–धीरे सबकुछ ठीक हो जाएगा।

अपना कॉलेज करते–करते अब स्मिता ने घर के सारे काम निपटाना सीख लिया था। वह सोचने लगी ''क्या मैं आई के घर के सारे काम नहीं किया करती थी और तब पढ़ती भी थी। तो अब भी सब करूंगी पर पढ़ना नहीं छोडूंगी।'' रह–रह कर बस आलोक का साथ नहीं देना उसे

अखर रहा था और उसका यह व्यवहार उसे व्यथित करता था। धीरे–धीरे स्थिति तो सामान्य हो गई पर कांच के विश्वास के महल पर आई हुई वह खरोंच जस की तस थी। वह मिटने की उम्मीद नहीं थी। खरोंच मिटेगी तब शायद कांच टूटकर बिखर जाएगा यह सोचकर स्मिता चुप थी।

एक दिन स्मिता कॉलेज गई थी। अचानक उसे लेने वहां आलोक पहुँच गया। अंजली के साथ वह क्लास रूम तक पहुँचा। बोला, ''तत्काल घर चलो।'' उसने अंजली की तरफ देखा। वह भी कुछ डरी–डरी सी दिख रही थी। स्मिता भी डर गई। उसे कुछ समझमें नहीं आ रहा था। वह आलोक के साथ घर पहुँची। घर जाकर देखा तो मम्मी जी की टी. व्ही. हमेशा की तरह जोर–जोर से चल रहा था। छुटकी के कमरे से उसके जुम्बा क्लास की आवाज आ रही थी और पापा जी दरवाजा बन्द कर हमेशा की तरह सो गए थे। आलोक ने स्मिता को कहा, ''जल्दी बैग भरो। हमे तुरंत ही तुम्हारे बाबा के यहाँ निकलना है। वो सीरियस है।'' स्मिता घबराई। रोने लगी। आलोक ने उसे कहा, ''रोने का समय नहीं है स्मिता, जल्दी चलो।''

10

स्मिता और आलोक सीधे अस्पताल पहुँच गए। बाबा की हालत देख स्मिता आलोक के कंधे पर सिर रखकर रोने लगी। डॉक्टरों ने उनसे मिलने की मनाही कर रखी थी। वह आई.सी.सी.यू. में थे। उन्हें दिल का दौरा पड़ा था। काँच में से स्मिता ने उन्हें दूर से ही देखा। वो चुपचाप सो रहे थे। उनकी उम्र अचानक 10 साल ज्यादा दिख रही थी। चेहरे की सफेदी उन्हें ज्यादा बूढा कर गई थी। वो बहुत थके–थके से लग रहे थे। दो घंटे बाद उन्होंने आँखे खोली तो सिस्टर ने स्मिता को अन्दर बुलाया। स्मिता उनके पास बैठ गई, ''विजू, विजू।'' के अलावा वह कुछ भी नहीं बोल रहे थे। उनका हाथ पकडकर वो बोली, ''बाबा मैं यहीं हूँ। आप शांति से सो जाइए। अब मैं आ गई हूँ ना, सब ठीक हो जाएगा।'' उसे देख बाबा ने उसके सिर से हाथ फेरा और बोले, ''बस तुम्हे देखने के लिए ही जिन्दा हूँ बेटा।'' कहते हुए उनकी आँखें डबडबाई। डॉक्टरों ने बताया कि उन्हें 'कम्पलीट हार्ट ब्लॉक' हो गया है और स्थिति एकदम नाजुक है।

तीन दिन तक स्मिता घर नहीं गई। उसने अपने बाबा को एक मिनिट भी अकेला नहीं छोडा। पिता के चेहरे पर उभर आई थकान की रेखाएँ स्मिता की आँखों से छिप न सकी। आज उसे ऐसा लग रहा था जैसे समय ने अचानक अपनी चाल बदल दी है। स्मिता के मन में एक साथ प्रार्थना और भय का संगम उमड़ पड़ा था। रात की नीरवता में उसकी प्रार्थनाऐं आकाश की ओर उठती थी और यही पुकार करती थी, 'हे ईश्वर मेरे बाबा जल्दी ठीक हो जायें और उनका स्नेहिल अस्तित्व सदा ही मेरे जीवन का अड़िग सहारा बना रहे।' उनके ठीक होने के लिए न जाने स्मिता क्या–क्या प्रार्थनाए कर रही थी और मन ही मन कहां–कहां मिन्नतें माँग रही थी।

तीन दिन बाद उन्हें सामान्य कमरे में शिफ्ट कर लिया गया। स्मिता उनके पास ही थी। अब स्थिति काफी नियंत्रण में लग रही थी। लेकिन डॉक्टरों के अनुसार खतरा अभी भी टला नहीं था। अभी भी वह ऑक्सिजन सपोर्ट पर थे। बाजू में लगा हुआ कार्डियक मॉनीटर अभी भी उसे भय–भीत कर रहा था। बाबा चुपचाप पड़े–पड़े अपनी सूनी आँखों से एकटक स्मिता को ही देखते रहते थे। ऐसा लगता था कि वह बहुत कुछ कहना चाहते है पर डॉक्टर ने उन्हें बोलने की सख्त मनाही कर रखी थी और उनकी भी हिम्मत अब जबाव दे रही थी।

शाम का समय था। स्मिता उनके पास बैठकर संतरा छील रही थी कि अचानक उन्होंने जोर से कहा, ''विजू'' और वह कोलेप्स हो गए। ''डॉक्टर, सिस्टर, कोई है, जल्दी आओ'' स्मिता चीखी। डॉक्टर कमरे में भागे। उन्होंने तत्काल किशोरी लाल जी को शॉक दिया। सिस्टर जोर–जोर से उनका सीना दबा रही थी। हाथ में दवाईयाँ लेकर आशुतोष दौडता हुआ आया। स्मिता एकदम घबरा गई थी। आलोक ने उसे थामा और पकड़कर कुर्सी पर बिठाया। वह उसे पानी पिलाने लगा। लगभग आधा घंटा प्रयास करने के बाद डॉक्टरों ने भी अब सिर नीचे कर 'सॉरी' कह दिया। यह बात सुनकर स्मिता की तो मानो दुनिया ही समाप्त हो गई थी।

बाबा के नही रहने की खबर सुनते ही जैसे उसके जीवन का आकाश अचानक अधिंयारा सा हो गया था। जिस स्वर ने उसे जीवनभर साहस दिया था वह स्वर अब शाश्वत निस्तब्धता में विलीन हो चुका था। उसकी आँखों के सामने अंधेरा छा गया। वह तो रोना भी भूल गई। एक दम मूरत बन कर बिना पलक झपकाए किसी अज्ञात शून्य में देख रही थी।

दूसरे दिन सुबह बाकी कार्यक्रम तय हुए। उन्हें सम्पन्न कराकर, स्मिता को वहीं छोडकर आलोक वापस हो गया। घर में मेहमानों का आना जाना लगा ही था। त्रयोदशी भी हो गई। आलोक अगले दिन स्मिता को लेने आने वाला था। स्मिता चुपचाप वापस अपने ससुराल जाने की तैयारी कर रही थी। उसका मन भारी था। वह स्मृतियों के सहारे अपने बाबा के स्पर्श को टटोलने लगी; बचपन की उंगली थामें

चलते रही, स्नेह से भरी ड़ांट, अपनी विजू पर उनका अटूट विश्वास– सब कुछ एक साथ उमड़ पड़ा।

अब मायका खत्म होने का दुख उसे बैचेन कर रहा था। मन में बचपन की सारी कहानियां उसे और भी परेशान कर रही थी। घर की प्रत्येक छोटी–छोटी वस्तु भी जैसे स्मिता की ओर उदासीन भाव से देख रही थी। कितनी छोटी उम्र से उसने घर को सम्भालना सीख लिया था। वह आई का बिस्तर, दहलान में पड़ी आगंतुकों की कुर्सियां और उन में से एक उसके बाबा की कुर्सी, आशुतोष का हमेशा ही बिखरा हुआ कमरा और स्मिता की अपनी अलमारी और पढ़ाई की मेज और उसके ड्रावर। सभी कुछ स्मिता को यादों में बसने के लिए बैचेन सा कर रहा था। बहुत भारी मन से स्मिता अपना सामान बटोर रही थी और बैग भर रही थी।

अचानक आशुतोष स्मिता के पास आया उसने अपना स्नेह भरा हाथ स्मिता के सिर पर फेरा और वह कहने लगा, ''विजू तुम्हे घर का जो कुछ सामान चाहिए तुम लेकर जा सकती हो। ये आई की और बाबा की अलमारी की चाबियां है। तुम खुद खोलकर अपनी पसंदीदा चीजें ले जाना।'' कहते हुए उसने स्मिता के सामने चाबियों का गुच्छा रख दिया और बाजू की कुर्सी पर बैठते हुए बोला, ''मुझे तुम से बहुत जरूरी बात करनी है।'' ''बोलो दादा'' स्मिता ने उदास स्वर में कहा। आशुतोष कहने लगा, ''देखो विजू मुझे सिंगापुर में नौकरी मिल गई है। और अब मेरा यहां रहने का मन भी नहीं है। मैं परसों ही ज्वाइन करने जा रहा हूँ। घर–दुकान सारा समेटने में लगा हूँ। बाबा को पूछकर ही मैने दो माह पहले ही एप्लाई किया था। उन्होंने मुझे जाने के लिए उनकी स्वीकृति भी दी थी और कल ही मुझे मेरी नियुक्ति का मेल आया है। मैने भी उन्हें परसों आने की खबर भेज दी है। इस घर की चाबी तुम्हे देता चला जाऊंगा। जब तुम्हारा मन करे आ जाया करो।'' डबडबाए स्वर में आशुतोष बोल रहा था।

स्मिता की आँखों के सामने अंधेरा सा छा गया। उसका दिमाग कुंद सा हो गया। ''याने अब कहने के लिए मेरे पास मेरा दादा भी नहीं है।'' उसका मन फूट–फूट कर रोने लगा। पर वह चुपचाप नीचे सिर रखकर सब सुन रही थी। आशुतोष कहने लगा, ''विजू दुकान मैंने सामान सहित किराए पर दे दी है। उसका किराया आते रहेगा। दोनों के बैंक

एकाउंट में प्रति माह आधा–आधा आएगा। प्रति माह तुम्हे 20 हजार रूपये मिलते रहेगें। घर का क्या करना बाद में सोचते है। अभी तो चाबियां तुम्हारे पास ही रहेगी और यह घर तुम्हारा।''

स्मिता चुपचाप सुनती रही। अचानक उसे ऐसा लगा जैसे एक अंधे गहरे कुएं में उसे कोई फेक रहा हो और वो सहायता के लिए किसी को पुकार रही हो। पर उसे बचाने कोई नहीं आ रहा। वो चीखती चिल्लाती तेज रफ्तार से नीचे गिर रही हो। उसका सर चकरा गया और वह धप् से सिर पकड़ कर नीचे बैठ गई। आगे कुछ भी कहने की कोई गुंजाईश नहीं थी और कुछ कहना भी बेकार था। स्मिता को अचानक अपने अकेले होने का एहसास डरा गया। जोर–जोर से चीखने का उसका मन हो रहा था पर वह शांत, एक दम निर्जीव होकर किसी मूरत सी जमीन पर बैठी रही। आशु ने हाथ देकर उसे उठाया और पानी पिलाया। इतने में आलोक की गाड़ी का हार्न बज गया। आलोक आ चुका था। उसे लेने के लिए। स्मिता ने चुपचाप अपनी बचपन की और माता–पिता की सारी तस्वीरें अपने बैग में रख ली। उसने अपनी आई का वह हार पहने हुआ वाला फोटो भी उठा लिया और आशुतोष के पांव पड़ कर वह आलोक के साथ निकल गई।

11

समय बीतता गया। अपने पंख फैलाये यू उड़ गया, मानो क्षणभर में युग बीत जाए। आज आशु को जाकर 04 वर्ष हो गए थे। उसका एक भी फोन नहीं आया था। समय की गति रोकना स्मिता के हाथ में नहीं था। अब वह एक बेटे की 'माँ' बन गई थी। बेटे का नाम रणदीप रखा था। एक दिन अचानक आशुतोष का फोन आया, ''विजू, मैं शादी करने जा रहा हूँ। तुम्हारी भाभी इटालियन है। मेरे ही ऑफिस में काम करती है और हम लोग तीन साल से एक साथ ही रहते है। शादी के बाद हम लोग कॅनेडा शिफ्ट हो रहे है। अब वहां पहुंचकर सेटल होने पर तुम्हें फोन करूंगा।'' और उसने फोन रख दिया। स्मिता को इस बात का दुख हुआ कि उसने पलट कर उसके और आलोक के हालचाल पूछना भी जरूरी नहीं समझा। स्मिता उससे जी भर कर बातें करना चाहती थी। अपनी भाभी से भी मिलना चाहती थी और रणदीप के बारे में 'मामा' जी को सब कुछ बताना चाहती थी। पर आशुतोष ने उसे इतना मौका ही नहीं दिया। और बस अपनी बात करके फोन रख दिया था।

इस बीच स्मिता ने अपना एम.एस.डब्लू. भी पूरा कर लिया था। अंजली ने उसे जिला अस्पताल में मॅडिकल सोशल वर्कर की पोस्ट भी ऑफर की थी। स्मिता भी नौकरी करना चाहती थी। उसके नम्बर भी अव्वल थे और उसने यूनिर्वसिटी में प्रथम आकर गोल्ड मैडल भी जीत लिया था। घर पर नौकरी की बात सुनते ही मम्मी जी विस्फोटक हो गई थी, ''अभी बच्चा छोटा है। और मै दिन–ब–दिन बूढ़ी होती जा रही हूँ। मुझसे बच्चे सम्भाले नहीं जाते।'' कहकर उन्होंने बात शुरू होने के पहले ही स्मिता की नौकरी करने की उम्मीद पर पानी फेर दिया था। इस बार भी आलोक ने हमेशा की तरह सुविधा की चुप्पी साध रखी थी। माँ जी ने बोला, ''तुम्हे किसी बात की कोई कमी है क्या? हमे नौकरी की क्या जरूरत?'' स्मिता ने आलोक की तरफ देखा। आलोक ने इतना ही कहा,

''अब मैं सिनियर मैनेजर हो गया हूँ। कुछ मेरे स्टेट्स के बारे मे भी सोचो और फिर दीप अभी छोटा है।'' कहते हुए वह उठकर सीधा गाड़ी में बैठ गया। आज स्मिता के मन को फिर से आलोक ने उदासी के साये में ढकेल दिया था।

रात को बिस्तर पर पड़े–पड़े स्मिता यही सोच रही थी, ''पहले आई बीमार थी तो घर के काम। फिर वह चल बसी इसलिए घर के काम। विवाह हुआ तो ससुराल में बहू हूँ इसलिए घर के काम। और अब आई बन गई हूँ इसलिए आई के रूप में घर के काम।'' इन सब कामों में वह स्वयं के अस्तित्व को खोज रही थी। स्मिता के अंदर की चंचलता, पूरे मोहल्ले में बाते करके सब का हाल–चाल पुछने वाला वह स्वभाव अब धीरे–धीरे चुप्पी के अंधेरे में गुमसुम था। सब के साथ रहते हुए भी, वह अपने आप को एकदम अकेली सी महसूस करने लगी थी। केवल सबके लिए सदा खटना ही शायद उसकी नियति थी। इन सब में वह भूल गई कि उसके भी कुछ शौक हुआ करते थे। उसकी भी स्वयं के बारे में कोई राय हुआ करती था। कोई इच्छाऐं थी। आकांक्षाऐं थी। पलंग पर पड़े–पड़े वह कब तक रोती रही उसे खुद मालूम ही नहीं चला। बस, अचानक पक्षियों की चह–चह आहट से उसे सुबह होने का अंदेशा आया। सुबह आलोक उठा तो उसने देखा कि स्मिता अभी तक पलंग पर ही पड़ी थी। ऐसा आजतक कभी नहीं हुआ था। ''यह क्या? तुम उठी नहीं?'' ''रात को ज्वर आ गया था, अभी भी बदन दुख रहा है और आँखे जल रही है। सिर भी बहुत भारी है।'' स्मिता कराहते हुए बोली। आलोक ने स्मिता का माथा छू कर देखा, ''अरे! बुखार तो काफी तेज है। रात में मुझे उठाया क्यों नहीं? जगा लेती ना?'' ''जगा कर क्या करती भला'' स्मिता ने भारी स्वर में बोला और करवट बदल कर चुपचाप लेटी रही।

आलोक ने मम्मी को जाकर बताया। यह जरूरी भी था। अब 09:00 बज गए थे पर स्मिता की सास उसे देखने कमरे तक भी नहीं आई थी। आलोक बिना नाश्ते के ऑफिस चला गया था। स्मिता चुपचाप अपने पलंग पर पड़ी रही। उसे अपने आई–बाबा का घर बहुत याद आ रहा था।

तीन दिन में स्मिता का बुखार तो उतर गया पर शरीर मानो थकान की एक गहरी खाई में डूबा हुआ सा था। उसका अंग भारी और सुस्त

था। आँखों में नीद की धुंध बनी थी और शरीर तथा मन केवल विश्राम चाह रहे थे। लेकिन कितने दिन पड़ी रहूं, यह सोचकर स्मिता फिर से खड़ी हो कर, घर के काम करने की कोशिश में लगी रही। जैसे कोई घायल पंक्षी पंख समेटे फिर से उड़ने की कोशिश करें। इन तीन दिनों में आलोक जरूर दो बार फोन कर स्मिता के हालचाल पूछंता रहा। पापा जी भी समय–समय पर कमरे में आकर उससे बाते करते थे पर माँ जी और छुट्की ने कोई वास्ता नहीं रखा। उनके व्यवहार से स्मिता निश्चित ही आहत हो गई थी।

दिन बीतते गए। स्मिता अब घर की एक निर्जीव सदस्य के रूप में सब का सुनती और सब के कहे अनुसार ही काम करती। सारी जिम्मेदारियां भी उसी की थी। स्मिता की स्थिति भी कुछ पापा जी की तरह हो गई थी। आज–कल पापा जी से भी उसका संवाद कभी–कभी ही हो जाता था। उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता था। तबियत जरा डगमगा ही रही थी। वह दमा के मरीज थे। उनकी अक्सर सास फूल जाती थी और उन्हें बैचेनी होती थी। बार–बार वह डॉक्टर के चक्कर काटते रहते थे और कई बार तो स्मिता ही उन्हें डॉक्टर के पास ले गई थी। सासू जी ने बेफिक्री से कहा था, ''अब मैं कोई डॉक्टर तो हूँ नहीं? मैं क्या कर सकती हूँ? दवा लेलें और आराम करें।'' आज–कल आलोक भी बहुत कम ही संवाद करता था। स्मिता और उसके बीच केवल काम के लायक ही बातचीत होती थी। वह सुबह जल्दी निकल जाता था और रात को भी अक्सर लेट आया करता था। अब वह कम्पनी का वाइस प्रसिडेंट बन गया था। वह हमेशा अपने काम के बोझ में गुथा हुआ रहता था।

12

ढलते हुए स्वास्थ्य को देखकर पापा जी को अक्सर छुटकी की चिंता सताती रहती थी। वो उसके विवाह की जल्दी पाड़ रहे थे और आखिर वह दिन आ ही गया, जब छुटकी का विवाह तय हुआ।

लड़का माँ जी और छुटकी की इच्छानुसार था। माता–पिता यही भारत में रहते थे। वह एक छोटे से गांव में अपनी खेती–बाड़ी करते थे। लेकिन लड़का विदेश में अच्छी ओहदे वाली नौकरी कर रहा था। माँ जी ने छुटकी को यही समझाया था कि अच्छा है तुम्हे सास–ससुर का झंझट नहीं रहेगा। साल में 01 बार आकर 02 दिन चले जाने से काम बन जायेगा। माँ जी और छुटकी की पहले से बस यही ख्वाहिश थी कि ससुराल वाला झंझट न हो और मन चाहा लड़का मिलने से छुटकी भी बेहद खुश थी। आज कल घंटो फोन पर ही लगी रहती थी।

सासू जी और छुटकी को अब एक मिनिट की फुर्सत नहीं थी। वो दोनों बस शॉपिंग में व्यस्त हो गई थी। उन्होंने स्मिता को साथ चलने कभी नहीं कहा। घर में रह कर स्मिता उनकी शॉपिंग की थकान दूर करते–करते अपनी थकावट को तिलांजली देती रही।

छुटकी के ब्याह का दिन आ गया। आलोक ने स्मिता का एक साड़ी देते हुए कहा, ''देखो न, कितनी सुन्दर है। माँ जी तुम्हारे लिए लाई है।'' स्मिता ने भी मुस्कुराते हुए उसे लिया। वह कुछ न बोली जबकि वह साड़ी स्मिता बिलकुल भी पसंद नहीं आई थी। पर स्मिता हमेशा की तरह चुप। एकांत में अपने आँसू पोंछकर वह पुनः मुस्कुराकर तैयार! घर में शादी की सारी तैयारियाँ जोर–शोर से चल रही थी। कभी कोई चाची तो कभी कोई बुआ या मौसी आ ही जाती थी पर स्मिता की राय लेना या पूछना या कोई भी कार्य में उसकी सहभागिता कराना कोई जरूरी नहीं समझता था। वह देख रही थी कि पापा जी भी इन सबसे

दूरी बनाये चुप ही रहते थे। एक इतवार आलोक और मम्मी जी ने जाकर हॉटल बगैरा सारी बुकिंग्स पूरी कर ली थी। बाहर जाते हुये आलोक ने स्मिता को, 'बस निकलते हैं' इतना ही कहा था। उस रविवार पापा जी की स्वास्थ्य थोड़ा खराब था। मम्मी जी ने जोर देकर कहा, ''स्मिता तुम घर पर ही रहो और पापा का ख्याल रखना। हमें आने में देरी हो जाएगी।''

स्मिता सोच रही थी, ''क्या मेरी उदासी को आलोक भी पहचान नहीं पाता है? या क्या वह जानकर भी अनजान बनता है? या फिर अपनी माँ को पहचानते हुए वह कुछ भी कह और कर नहीं पाता?'' इन प्रश्नों ने स्मिता को हमेशा ही घेरा रहा। पूरे परिवार के बीच रहते हुए भी स्मिता अकेली थी। घर में रहते हुए भी उसे अक्सर ऐसा लगता था कि मानो वह अकेली किसी वीरान जंगल में भटक रही हो और किसी सुरक्षित स्थान की तलाश में लगी हो।

आखिर छुटकी की शादी का दिन आ ही गया। घर में मेहमानों का आना जाना शुरू हुआ। आज विवाह था और छुटकी अपनी बारात के लिए सज रही थी। ब्यूटी पॉर्लर वाली भी छुटकी को स्मिता के कमरे में ही तैयार कर रही थी। छुटकी तैयार हुई और स्मिता भी। स्मिता ने अपनी आई का दिया हुआ हार डरते–डरते सासू जी से मांगा। मन मार के उन्होंने तिजोरी से निकाल कर वह हार स्मिता को दिया। हाथों में उस हार को देख स्मिता की आँखें भर आयी। अपने वचन के बाद भी आलोक ने माँ से वह हार वापस स्मिता को दिलाने की पहल नहीं की थी। सालों बीत गए थे और आज वह हार देखकर स्मिता के मन में अपनी आई की यादों का तूफ़ान चल पड़ा। स्मिता वह हार हाथ में लेकर जाने कितनी देर केवल स्तब्ध खड़ी। अचानक छुटकी ने उसे हिलाते हुए कहा, ''भाभी ये हार तो मेरी साड़ी पर एक दम मैच कर रहा है।'' स्मिता सकपकाई। उसने झट से वह पहन लिया और काम के बहाने वह कमरे से बाहर निकल गई। पर छुटकी शांत रहने वाली कहां? छुटकी ने अपनी माँ को जोर से आवाज़ लगाई, ''मम्मी, सुनो तो!'' मम्मी दौडकर आई। छुटकी कहने लगी, ''मम्मी, देखो तो मैने जरा भाभी से कुछ समय के लिए पहनने के लिए वह हार क्या मांगा तो वो मुंह फेर कर चल दी। देखो न मम्मी वह हार मेरी साड़ी की किनार से कितना मिलता–जुलता है। मैं पहन लूं?'' मम्मी जी ने अविलम्ब आवाज लगाई, ''स्मिता, बेटा

जरा सुनो तो।'' स्मिता बहुत कुछ समझ गई। सासू जी की पहली पुकार को उसने अनसुना कर दिया और वह अपने काम में लगी रही। पर सासू जी रूकने वाली कहां थी। आखिर स्मिता को कमरे में आना ही पड़ा। उसे आते देख वह एक दम बोल पड़ी, ''अरे, जरा तुम अपना हार निकालना। वर माला तक छुटकी वह पहनना चाहती है। दे दो उसे।'' इस के पहले कि स्मिता कुछ कहे, छुटकी का हाथ भाभी के गले तक पहुंच गया था। गले से हार हल्का हो गया। स्मिता के आँसू अब न रूक सके। उसने रोते–रोते ही कहा, ''पर मम्मी जी..........'' ''अरे तो क्या ससुराल ले जाएगी वो? जरा पहनकर दे देगी। इससे कई भारी और सुन्दर हार अभी उसके ससुराल से आएंगे। फिर रख लेना तुम अपने इस हार को अपने पास। छुटकी के पास कोई हारों की कमी है क्या? पर मैचिंग था इसलिए मांग रही थी। वैसे भी तुम्हारे इस हार में इतना क्या धरा है!''

अगले ही पल वह हार स्मिता के गले से निकल गया और मुस्कुराते हुए छुटकी ने उसे पहन लिया। स्मिता की आँखों में विषाद था, मानो उसका पूरा संसार ही उजड़ गया हो। उसे ऐसा लगा कि वह छोटी सी बच्ची है और आई के गोद में बैठी है। अचानक एक राक्षस आता है और उस बच्ची को आई की गोद से उठाकर दूर फेक देता है। अचानक स्मिता को लगा वह बेहोश होने वाली है। उसने सहारा लिया और वह पलंग पर ही बैठ गई। उसने एक गहरी सास ली। आज वह एक दम हारी हुई महसूस कर रही थी। उसे ऐसा लगा जैसे उसकी आत्मा अब दुख के सागर से लड़ते–लड़ते थक गई हो। उसे गहरी चोट लगी थी। वह हार उसकी आई की अंतिम निशानी थी। उसकी जिंदगी की मधुर स्मृतियों की एक मात्र अंतिम किरण। वह भी चले जाने से मानो उसके जीवन में एक अजीब सा खालीपन छा गया। उसके दिल को पहुंची इस जख्म को अब कोई भर नहीं सकता था। वह एक शून्य मे ताक रही थी। उसकी आई की छवि उसकी निगाहों से ओझल जो रही थी। स्मिता को ऐसे लगा कि वह चिल्लाऐ, ''आई! रूक जाओ न आई!'' पर अनकही पीड़ा की गूंज कोई नहीं सुन सकता था। उस हार के साथ स्मिता की अपने आई–बाबा की स्मृतियाँ चली गई। वह फफक–फफक कर रोने लगी।

शादी हो गई। छुटकी ससुराल चली गई। पर स्मिता की आई की अंतिम निशानी उसके पास कभी न लौटी। वह कमरे में अकेली बैठी थी। लेकिन उसके चारो ओर की खामोशी उससे से भी अधिक अकेली थी। दीवार पर टंगी हुई अपनी आई–बाबा की तस्वीर को वह रोज रात घंटो देखा करती थी। रात–रात भर उसे अपने बचपन का घर और अटखेलियां सताती रहती थी। पर अब वह सब सिर्फ यादों की परछाईयां थी। उसके दादा ने उसे दोबारा फोन करना भी लाज़मी नहीं समझा था। स्मिता अकेली थी। एकदम अकेली।

वह उदास होती जा रही थी। एक ठहरी हुई उदासी जो हर सास के साथ और गहरी होती जा रही थी। दिल में उमड़ते हुए सवालों का कोई जवाब नहीं था। स्मिता का मन एक एकाकी खालीपन में डूबा रहता था। एक ऐसा खालीपन, जहां सिर्फ सन्नाटे की गूंज थी।

उसके आस–पास की सारी दुनिया तो यथावत चल रही थी पर स्मिता वहीं ठहर गई थी, अकेली, असहाय और निशब्द। यूं कहेंतो आलोक भी बहुत अच्छा था। अच्छे पद पर था, शांत था, सुशील था। घर में सारी सुख–सुविधाऐं, सम्पन्नता थी। पर फिर भी स्मिता अकेली थी। काश, भौतिक वस्तुओं में मनुष्य को अन्दर से खुश करने की क्षमता होती!

13

समय बीतता गया। स्मिता का बेटा रणदीप अब 15 साल का हो गया था। सास–ससुर को परलोक सिधारे 05 साल से ज्यादा हो गए थे। सासू जी को पक्षाघात हो गया था। वह एक साल से बिस्तर पर ही थी। उनका संसार जैसे एक कमरे में चार दीवारों के भीतर सिमट गया था, और स्मिता का संसार उनकी सेवा में।

सुबह से रात तक वह उनकी दवा, भोजन, स्नान, यहां तक की उनके सारे काम में अपना समय और मन दोनों समर्पित कर उनकी सेवा में जुटी थी। यह सेवा केवल कर्तव्य नहीं था, स्मिता आज भी दोनों के बीच सम्बध और रिश्तों की डोर बनाने की कोशिश कर रही थी। वो उन्हें सास नहीं अपनी आई समझ कर ही सेवा कर रही थी। उस दिन उनका स्वास्थ्य कुछ ज्यादा ही खराब था। स्मिता ने देखा सासू जी बिस्तर पर पड़े–पड़े एक टक छत की ओर देख रही है। उनकी आँखों में एक अजीब सा भार था– मानो स्वयं के स्मिता के प्रति व्यवहार का वह मन ही मन हिसाब मांग रही हो। स्मिता की सेवा और धैर्यपूर्ण मौन अब उन्हें भीतर तक झकझोर रहा था। उनकी आँखे भर आई थी।

आज न जाने घर की हवा भी कुछ थमी–थमी सी हो गई थी। साँसों के बीच लम्बे विराम लेती सास स्मिता के सामने बिस्तर पर पड़ी थी। उनकी आँखों की कठोरता गलकर किसी गहरी पश्चाताप की नमी से पिघल रही थी। कांपती हुई उंगलियों से वो स्मिता के हाथों को सहला रही थी। जिसे उन्होंने जीवन के हर मोड़ पर कसौटी पर कसा था, जिसके सपनो को अपनी जिद की सलाखों में बाधां था वह बिस्तर पर पड़े–पड़े अपने अंतिम समय पर अपने उस व्यवहार पर पछता रही थी। वह कुछ बोलने की स्थिति में नहीं थी पर बहती हुई आँखे शायद पछतावे की थी। उन्होंने स्मिता का हाथ अपने हाथों में लिया और उनकी आँखें बहती हुई अश्रु की धारा को रोक नहीं पा रही थी। वह रोती रह गई

और स्मिता के हाथ को अपने हाथ से सहलाने की कोशिश कर रही थी। जैसे बेजुबान होकर वह स्मिता से माफी मांग रही थी। उनकी यह अवस्था देख स्मिता ने पलभर में ही उन्हें माफ कर दिया था और उनका हाथ चूमते हुए स्मिता रोने लगी थी। उसकी आँखों के आंसू, उनके सूखे, तपते माथे पर गिर पड़े। सासू जी की दृष्टि धुंधला रही थी। पर बहू के आंसुओं की गर्माहट उन्हें एक अंतिम सांत्वना दे रही थी। उनके चेहरे पर एक मंद सी मुस्कान ठहर गई जैसे जीवन के अंतिम क्षणों में उन्हें अपने स्वयं के हृदय का सत्य दिखाई दिया हो।

देखते ही देखते उसी अवस्था में उन्होंने आखिरी सांस ली।

उनकी सेवा में स्मिता ने माँ और सास मे कोई भेद्भाव नहीं किया था। स्मिता यही सोचकर लगी थी कि उनका मेरे अलावा और मेरा उनके अलावा है ही कौन? पापा जी एक साल पहले अस्थमा के ॲटेक से चल बसे थे। इस बीच उन्हें देखने छुटकी बस दो दिन आई थी। आज भी छुटकी अपनी माँ के पास नहीं थी। स्मिता ने फोन कर उसे माँ के ना रहने की खबर बताई थी। वह दूसरे दिन आ भी गई किन्तु बस एक दिन में चली भी गई। यह कहते हुये कि अब मेरा तो मायका ही खत्म हो गया। सासू जी के जाने का स्मिता को काफी गहरा सद्मा पहुंचा था और उसपर छुटकी के इस तंज ने स्मिता को आहत कर दिया।

आलोक अब बहुत ऊँचे ओहदे पर पहुँच गया था। अक्सर विदेशों में जाना–आना लगा रहता था। स्मिता के भाई ने तो उससे किसी प्रकार का कोई संबंध ही नहीं रखा था। यहां तक कि वह आज–कल कहां है यह भी स्मिता को पता नहीं था। छुटकी ने भी कभी उससे बात नहीं की थी। वह सिंगापुर ही शिफ्ट हो गई थी। घर के सारे काम करते करते या कहें अपनी गृहस्थी को चलाते हुए वह अकेलेपन के अंधे कुऐं में गिर रही थी।

सुबह 06:00 बजे उठकर दीप का डब्बा, उसकी स्कूल बस, फिर उसकी पढाई, फिर आलोक का खाना बस यही उसकी जिन्दगी हो गई थी। आलोक और दीप दोनों ही अपनी दुनिया में खोए हुए थे। आलोक के मित्रों की अक्सर घर पर पार्टियाँ हुआ करती थी। आलोक के स्टेटस के लिए दिये जाने वाली पार्टीयाँ! सब करते–करते स्मिता के अन्दर की वह विजू मर चुकी थी। मित्रों के सामने आलोक बड़े नाज से कहता था,

''उसे कुछ नौकरी करने की क्या जरूरत है? वो कुछ नहीं करती। शी इज जस्ट ए हेप्पी हाऊस वाईफ।''

आज कल महाराज छुट्टी पर गया था। वह वर्ष में दो बार 10–10 दिनों के लिए जाया करता था। महाराज के ना होते अब स्मिता बहुत ज्यादा व्यस्त रहती थी। किचिन का काम बढ़ जाता था। उस दिन भी कुछ ऐसा ही हुआ। स्मिता ने शाम का रसोई का काम निपटा लिया था। दीप को खाना भी खिला दिया था और वह होमवर्क कर अपने कमरे में सो गया था। स्मिता रात के 09:30 बजे आलोक की राह देख रही थी। अमूनन वह 08 – 08:30 तक घर आ ही जाता था। पर आज कुछ ज्यादा ही देर हो गई थी। स्मिता उसका इंतजार ही कर रही थी कि अचानक घर की घंटी बजी।

स्मिता ने जल्दी–जल्दी दरवाजा खोला। आलोक दरवाजे पर था और उसके साथ तीन मित्र और थे। आलोक के चेहरे पर थकान साफ–साफ दिख रही थी। दरवाजा खुलते ही आलोक ने कहा, ''अरे, आज तुम्हारे घर कुछ मेहमान भी आए है। ऑफिस की कुछ जरूरी बातें रह गई थी तो सोचा रात के खाने के मेज पर ही बातें हो जाऐंगी। चलो झटपट कुछ अच्छा खाना बना दो।'' आलोक के हाथों से बैग लेते हुए स्मिता ने धीरे से कहा, ''फोन करते या पहले बता देते तो तैयारी कर लेती'' आलोक ने उसकी ओर जरा नराजगी से देखा और अपनी टाई हलकी करते हुये, अपने दोस्तों की ओर देखकर बोला, ''बताओ यार इन्हें तैयारी करनी पड़ती है। दिनभर घर पर ही तो रहती है। घर में काम ही क्या रहता है?'' यह टिप्पणी जैसे स्मिता को चीरती हुई, हृदय में नहीं सीधे उसके आत्मसम्मान में ऊतर गई। सारे मित्र हल्के मुस्कुराएँ पर किसी ने कुछ नहीं कहा। पर यह मुस्कान स्मिता को बहुत कुछ कह गई।

स्मिता चुपचाप बैग रखकर रसोई में चली गई। फ्रिज खोला, कुकर लगाया और वह नये सिरे से रसोई के काम में जुट गई। हाथ जल्दी–जल्दी चल रहे थे पर उसका मन कहीं रूक गया था। बार–बार उसे वह बात याद आ रही थी। ''दिनभर घर पर ही तो रहती है। घर में काम ही क्या रहता है?'' उसे सुबह से सारे काम याद आने लगे। घर की सफाई, बिजली का बिल, आलोक के जूते, शर्ट के टूटे बटन, दीप

का कमरा, उसके कपड़े, बगीचें का काम और सब के अलावा सब का मन मर्जी का खाना! क्या? यह सब 'घर पर ही रहना था क्या?'

खाना तैयार हो गया। इस बीच आलोक के ड्रिंक्स के लिए उसने गरम–गरम पकोड़े भी बना दिये थे पर रसोई की आँच कम और उसकी आँखें ज्यादा जल रही थी। सबने खाना खाया। खाते–खाते स्वादिष्ट खाने की सब ने तारीफ की। आलोक भी बड़ी प्रसन्नता के साथ स्मिता के खाने की तारीफ करते सबको बता रहा था, ''इसलिए स्त्री को घर में ही रहना अच्छा रहता है। अपने को आराम मिलता है। ऑफिस से आओ तो घर साफ और खाना तैयार।'' और सभी जोर–जोर से हंस पड़े। स्मिता ने भी सबके सामने हल्की मुस्कान ओढ़ ली।

मेहमान चले गये। किचिन समेटकर स्मिता कमरे में नही गई। चुपचाप अंधेरे में बाहर लॉन पर ही बैठी रही। जब बहुत देर नही आयी तो आलोक ने उसे आवाज लगाई। कोई प्रति उत्तर नही आने पर वह बाहर आया, ''अरे मैं कब से बुला रहा था। क्या हुआ?'' स्मिता ने बिना डर, बिना झिझक से उसकी ओर देखा, '' क्या हुआ? आलोक तुम सबके सामने कहते हो कि मैं बस घर में ही रहती हूँ और क्या काम करती हूँ? क्या कभी मैंने भी जॉब करना नही सोचा था क्या? क्या मैं इसके लायक नही हूँ? और फिर मेरे हर छोटे–बड़े घर के कामों को आप नही देखते हो क्या? क्या घर के काम कोई काम नही होते? ये सारा घर कैसे चलता है कभी सोचा है तुमने?'' और वह रोने लग गई। आलोक कुछ क्षण चुप रहा और बोला, ''अरे, बोल दिया तो बोल दिया। इतना मन को लगाने की कोई जरूरत नही है।'' और वह मुड़कर कमरे में चला गया। उस रात स्मिता नीचे सोफे पर ही पड़ी रही। उसकी नींद कहीं गायब थी। रह–रह कर उसके कानों में यही गूंज आ रही थी। ''दिनभर घर पर ही तो रहती है। घर में काम ही क्या रहता है?''

स्मिता को आलोक का 'जस्ट ए हैप्पी हाऊस वाईफ' कहना ऐसा लगता था जैसे वह उसकी हंसी उड़ा रहा हो। हैप्पी हाऊस वाईफ, एक सुखी गृहिणी। स्मिता ने सोचा, यह शब्द भी बड़ा विचित्र शब्द है। इस हैप्पी हाऊस वाईफ के चेहरे की मुस्कान तो सभी को दिखती है पर उसकी आँखों का अकेला पन किसी को समझ में नहीं आता। हर सुबह रसोई में सुगंध फैलाते हाथ, हर किसी की पसंद याद रखने वाली वह

औरत, और हर शिकायत पर ''कोई बात नहीं'' कह देने वाली सहजता– इन सबके पीछे छिपा दबाव किसी को क्यों नहीं दिखता? इस दबाव के पीछे उस स्त्री की थकान, उसकी आकांक्षाऐं और उसके भीतर के शून्य को 'कर्तव्य' की चमकती परत से ढक देता है। सच तो यह है कि दुनिया उसे 'बहुत खुश' मानकर उसके त्यागों से ही उसे परिभाषित कर देती है। जबकि उसकी वास्तविक खुशी से किसी को कोई सरोकार नहीं होता। इस सुखी गृहिणी का आदर्श रूप दरसल उस मौन व्यथा का आईना बन जाता है, जिसे वह स्वयं धीरे–धीरे स्वीकार कर लेना सीख जाती है।

स्मिता अब भूल ही गई थी कि उसने कभी मनोविज्ञान में एम.ए. किया था और एम.एस.डब्लू भी पास कर लिया था। वह भूली थी कि कभी वह भी नौकरी करने के योग्य थी। उसने भी अपना सारा संसार, अपना परिवार ही स्वीकार कर लिया था। घर के और घर वालों की देखभाल करते–करते वह यह भूल गई कि उसकी कोई अपनी भी कोई जिन्दगी है। उसके भी कोई शौक है। वह भी कुछ करना चाहती है। गुनगुनाना चाहती है। उड़ना चाहती है। मुक्त आकाश में! उसके अन्दर अब कोई आग सुलगती नहीं थी। विचारों की कोई लहरें अब उसके मन में उमडती नहीं थी। वह शून्य हो गई थी। जिन्दा थी फिर भी मर चुकी थी।

बचपन में अपनी आई की, फिर सास–ससुर की, फिर पति की और अब बच्चे की सेवा करते–करते वह यह भूल गई थी, कि इन सब में 'वो– कहां हैं। है भी या नहीं। फिर भी सब के सामने मुस्कुराकर वह यही सिद्ध कर रही थी कि वह बहुत खुश है, संतुष्ट पत्नी, सफल बेटी, सरल बहू और सक्षम माँ है। इन सारे किरदारों में बस 'विजयंता' कहीं गुम हो गई थी।

आलोक ने नया बंगला बनाया– स्मिता खुश है।

अब दो गाड़िया ली– स्मिता खुश है।

स्मिता के लिए एक ड्राइवर रखा– स्मिता खुश है।

रणदीप परीक्षा में अव्वल आया– स्मिता खुश है।

सबकुछ तो अच्छा था। कुल मिला के स्मिता बहुत खुश है। सारी सम्पन्नता उसके चरणों में है। और वह अपने चहरे पर मुस्कान बिखेरे अपने 'स्मिता' होने की परीक्षा में पास हो रही थी। यह सिद्ध कर रही थी कि वह 'स्मिता' ही है।

पर स्मिता एक अकेलेपन की यात्रा की राह भटकी यात्री थी। पर इन सब पर विचार करना भी स्मिता भूल गई थी। बस वो बह रही थी। जीवन के इस अविरल धारा में। स्मिता के मन में एक अदृश्य उदासी का साया था। अकेलेपन की इस भावना ने धीरे–धीरे उसके मन को भी अकेला कर दिया। उसके चारों तरफ सभी अपने थे फिर भी उसे किसी के होने का एहसास न था। बस, भीतर एक खालीपन का एहसास। अपनी आई और बाबा की यादें किसी परछाई की तरह उसका पीछा करने लगी थी। उसकी आँखे आस–पास की भीड़ में भी किसी अपने को ढूँड़ रही थी। लेकिन हर अपना चेहरा उसे अजनबी सा प्रतीत होने लगा था।

उसका अकेलापन बाहरी तो कतई नहीं था। बाहरी तौर पर तो स्मिता जैसी सुखी स्त्री तो कोई थी ही नहीं। बड़ा बंगला, घर के सामने गाड़ियाँ, एक सुन्दर सा बेटा और सबसे जरूरी धनवान पति। और क्या चाहिए सुखी जिन्दगी के लिए? पर उसके मन में भीतर एक ऐसा खालीपन था जिसे कोई साथ, कोई स्पर्श, कोई पुकार पूरी तरह मिटा नहीं पा रहा था। और फिर भी स्मिता खुश थी। अब जीवन की इस गति पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था।

हर दूसरे दिन वो आलोक के साथ पार्टियों में जाती थी। आलोक के कहने पर वो जाती जरूर थी पर उन पार्टियों में उसे जरा भी आनन्द नहीं आता था। लेकिन आलोक के अनुसार पत्नी समेत बुलाए जाने पर 'स्टेटस ऊँचा' होता है। इन कार्पोरेट पर्टियों में अक्सर अब आलोक दो–तीन पेग ले ही लेता था और उस दिन भी ऐसा ही हुआ। आलोक के मित्र की विवाह वर्षगांठ थी। आलोक ने तीन पेग ले लिए थे। वह अपना नियंत्रण खोता दिख रहा था। वह चौथे पेग की तरफ बढ ही रहा था कि स्मिता ने उसका हाथ थामा, ''बहुत हो गया आलोक। चलो घर चलते हैं।'' पर उसकी इतनी सी बात पर आलोक एक दम भड़क गया और उसका हाथ झटक कर, एक बड़ा पेग ऑन दी रॉक्स कहते हुए

खत्म किया। वो स्मिता की ओर लड़खड़ाते हुए आया और नशे की हालत में कहने लगा, ''वेट माय इल्लिट्रेट वाईफ। ऑर्थोडॅक्स वाईफ वेट।'' और दोस्तों के सामने कहने लगा, ''मिडिल क्लास स्त्री की सोच भी मिडिल क्लास ही होती है। वो अपने घर को ही सारा संसार समझती है और उसके आगे की दुनिया के बारे में सोचने की उसकी क्षमता भी नहीं होती। वो जिंदगी को समझती ही नहीं है। बस बच्चे और घर में रह कर उसके दिमाग की खिड़की भी बन्द हो जाती है। ये घरेलू महिला क्या जाने कि दुनिया कहां जा रही है?'' स्मिता शर्म से चूरचूर हो गई उसे ऐसा लगा कि चीख–चीख कर वह सबको बता दे, ''मैं भी पढ़ी लिखी हूँ और तुम्हारे झूठे इगो के कारण तुमने मुझे कभी कुछ करने ना दिया। मैं भी एक मनोवैज्ञानिक हूँ और मैं तुम्हारे जैसी छोटी सोच के इंसान को बखूबी पढ़ सकती हूँ। यू आर ए शॉविनिस्ट! एंड यू आर ए मैन विथ डिसोशिएटिव आईडेंटीटी डिसऑर्डर।'' पर स्मिता चुप। हमेशा की तरह!

रात के डेढ बज रहे थे। स्मिता आलोक को सम्भालते–सम्भालते घर ले आई। घर आकर आलोक कमरे तक भी नहीं पहुँचा। वही सोफे पर ढेर हो गया। वह दरवाजे पर टिककर एक पल खड़ा हो गया। स्मिता उसे पकड़कर आगे ले जाने की कोशिश कर रही थी तो आलोक ने उसका हाथ जोर से झटकारते हुए बड़बडाया, ''यू इल लिटरेट ले..... डी।'' पर उसके पैर उसका साथ नहीं दे रहे थे और वो लड़खड़ाता हुआ सोफे पर गिर गया।

आलोक के इस रवैये से स्मिता को बहुत गुस्सा आया था और वह उसकी बेइज्जती सहन नहीं कर पा रही थी। उसने दूसरे ही दिन कहीं अच्छी नौकरी ढूढने का मन बनाया। आज उसे अंजली की बहुत याद आ रही थी।

अंजली और स्मिता में अच्छी दोस्ती हो गई थी। स्मिता के जीवन की वह एक अनमोल पूंजी थी। स्मिता जब अपने अकेलेपन से ऊब जाती या उदास होती, तो वह अक्सर अंजली के साथ अपना मन हल्का कर लेती और फिर दोनों बाहर घूमने जाती थी। उसे अंजली का साथ बेहद पसंद आता था। अंजली स्मिता की स्थितियों को बखूबी समझती थी। दोनों अक्सर साथ बाहर घूमने जाती। होटल जाती, फिल्म देखती और मस्ती के मूड़ में दिन बिताती। लेकिन अब अंजली की भी शादी हो गई

थी। वो आजकल पूना में रहती थी और आज उसका पास न होना स्मिता को बैचेन कर रहा था।

एक बार अंजली स्मिता को एक पब बार में ले गई थी। उसने एक बियर पी और स्मिता को भी पीने की जिद कर दी। पर स्मिता ने मोजिटो पर ही अपना काम चलाया था। फिर दोनों बहुत नाची थी। एक बार तो अंजली ने स्मिता को बच्चों की तरह बर्फ का एक काला खट्टा गोला भी खिलाया था तो एक बार उसे ब्यूटी पॉलर ले जाकर मेनिक्योर और पेडीक्योर करने मजबूर कराया था। अंजली के साथ रहते स्मिता को अपने जिंदा होने का पूरा एहसास होता था। उसका मानो बचपन लौट आता था। एक अंजली का ही साथ था जब वह हंसती थी, खिलखिलाती थी। पर जब से अंजली विवाह उपरांत पूना चली गई–मानो स्मिता के जीवन के रंग की छटाऐं भी अब काली और सफेद हो गई थी। अब उसकी कोई निजी सहेली बची नहीं थी। आज स्मिता को अंजली की बेहद याद आ रही थी। उसने फोन उठाया और और अंजली को रात के पार्टी का सारा किस्सा सुनाया और वह फफक–फफक कर रो पड़ी।

परिवार के साथ चेहरे पर मुस्कान बिखेरते–बिखेरते स्मिता अब थक गई थी। हर मुस्कुराहट के पीछे एक टूटे हुए दिल की कहानी छुपी थी। कभी–कभी तो उसे ऐसा लगता, जैसे वह खुद से भी बिछड़ गई थी। आलोक की व्यस्तता अब उसे खलने लगी थी। रात की खामोशी जब सीने में उतरती थी तो अपने आई–बाबा की यादों की परछाईयाँ और भी गहरी हो जाती थी। रात–रात भर सन्नाटे की चादर ओढे, स्मिता यादों की भीड़ में खो जाती थी। आई–बाबा के बाद उसका अपना एक बड़ा भाई था। पर अब शायद उसका दादा भी उसे भूल ही गया था। कभी–कभी वह यह सोचती कि क्या दादा को अपनी बचपन की यादें कभी तंग करती है और क्या अब विजू से उसका कोई नाता न रहा?

अकेलापन अब उसका साथी बन गया। जिसके संग स्मिता खामोशियों की लम्बी राते काटा करती थी। शादी के वक्त कितने अरमान थे उसके दिल में पर अब शादी के इन 13 वर्षो में उसके सारे अरमान खामोशियों में डूब गए थे। स्मिता करवटें काटते–काटते यादों की बारिश में चुपचाप अकेली भींग रही थी। अपने लफ्जों को मौन रखते–रखते शादी के 13 साल कैसे बीत गए उसे समझ ही नहीं आ रहा था।

रणदीप अब 12 वर्ष का हो गया था। वो भी अपने स्कूल और पढ़ाई के सारे क्रियाकलापों में व्यस्त था। स्कूल से आकर फुटबॉल ग्राउंड, घर लौट कर पढ़ाई और फिर सुबह से स्कूल उसकी अपनी एक दुनिया हो गई थी। उसके पास भी स्मिता के लिए समय न था। पर स्मिता दिनभर उसी में व्यस्त रहती थी। उसकी दुनिया उसी के इर्द–गिर्द घूमती रहती थी। पर अपनी जरूरतें और कामों के अलावा रणदीप के पास भी स्मिता के लिए कोई वक्त नहीं था।

फिर भी स्मिता खुश थी।

स्मिता अपनी गृहस्थी की गाड़ी में तेल डाल–डाल कर उसे गतिमान रख रही थी। वो गाड़ी जो बेफाम गति से चलती थी, कुचल रही थी स्मिता को! उसके अंदर की विजयंता तो दूर–दूर तक कहीं नजर ही नहीं आ रही थी। समय उड़ रहा था। मानों रेत की तरह मुट्ठी से फिसलता जा रहा था। खट्टे–मीठे अनुभवों से हर लम्हा एक पंख फैलाए आसमान की ओर ऊचाईयों पर उड़ रहा था। कभी–कभी स्मिता हाथों से फिसलते हुए क्षणों को थामना चाहती थी, पर वह तो हवा में घुलती किसी सांस की तरह अदृश्य हो जाता था।

14

साल बीत गए अब रणदीप भी विदेश पढ़ने चला गया था। वो लंदन में एम.बी.ए. कर रहा था। उसके चले जाने के बाद तो स्मिता बिलकुल ही अकेली हो गई थी। अब तो घर के काम भी खत्म से हो गए थे। बच्चा घर में था नहीं! और आलोक भारत में रहे तो सुबह–सुबह 08:00 बजे तक निकल ही जाता था। लंच वो अक्सर ऑफिस में ही किया करता था। हफ्ते में 03 दिन पार्टियां होती रहती थी। यह सारा अकेलापन अब स्मिता को खा रहा था। कहीं कुछ काम करने की बात पर आलोक उसे टोंक ही देता था, ''क्या जरूरत है काम करने की? घर में रहो मजे में। पर तुम हो कि नौकरी–नौकरी की राग हमेशा गाती ही रहती हो। मजे करो खुश रहो, घूमो, फिरो, ऐश करो! किस बात की कमी है? गाड़ी है, ड्राइवर है और क्या चाहिए।

स्मिता निशब्द! आलोक को समझाने के लिए उसके अधरों पर शब्द ही नहीं आते थे। वो जानती थी, आलोक को समझाना बहुत कठिन है। पर आलोक क्या जाने कि मनुष्य को खुशियाँ देने के लिए एक सच्चे मित्र या हमसफर की जरूरत होती है?

स्त्री को केवल धन, दौलत, गाड़ी ही सुख नहीं देती। एक पढ़ी–लिखी औरत हमेशा अपनी एक अलग पहचान बनाने की इच्छा रखती है। पार्टियों में, ''वो कुछ नहीं करती, बस एक हाऊस वाईफ है'' की टिप्पणियाँ उसे परेशान करती थी। वह किसी की परछाई नहीं बनना चाहती थी, अपने सपनो को अपने नाम से जीना चाहती थी। वह चाहती थी कि उसकी भी एक पहचान हो। वह सिर्फ बेटी, पत्नी, बहू या आई बनकर नहीं जीना चाहती थी और आलोक उसे कभी समझ नहीं पाया। उसे यही लगता था कि अब बहुत देर हो गई। अपने 'आउट–डेटेड' होने का भय उसे सताता था।

स्मिता को हिन्दी गाने बहुत पसंद थे। वो अपने पसंद के गाने भी लगाती तो आलोक उसे टोक ही देता था और अपने सूड़ो–स्टेटस के चलते बोल पड़ता था, ''ये क्या घटिया रूचि है तुम्हारी, जो हिन्दी फिल्मों की फूहड़ गाने सुनती हो। अरे सुनना है तो फरिदा खानम सुनो, किशोरी अमोनकर सुनो या पंडित जसराज सुनो। ऐसे फूहड़ गाने सुनकर पड़ोसी अपने बारे में क्या सोचेगें।'' लेकिन स्मिता कभी आलोक के सामने यह न कह सकी, ''मुझे रफी–आशा पसंद है; तो मैं सुनती हूँ। आशा की आवाज, उसपर आर.डी. बर्मन का संगीत और उस पर हेलन के थिरकते कदम मुझे अच्छे लगते है, तो क्या?'' पर नहीं। वो चुपचाप आलोक के जाने का इंतजार करती। ताकि वो अपनी पसंद के गीत सुन सके।

अक्सर कोई फिल्म देखने जाना हो तो स्मिता को लगता था कि जल्दी–जल्दी चली जाऊं। पर आलोक यही कहता, ''क्या करोगी जल्दी जाकर। वही घटिया विज्ञापन ही तो है।'' पर स्मिता उसे यह नहीं समझा सकती थी कि उसे वह लिरिल में नहाने वाली लड़की, वो कॉम्पलेन पी कर तुरंत बड़ा होने वाला बच्चा, वह बच्चे के सीने पर ढेर सा व्हिक्स मलती आई, हाथ में हाथ डाले दौड़कर मम्मी–पापा की गोद में चढ़ने वाले बच्चे या एवरेस्ट मसाले के छोले–भटूरे खाता हुआ वह सुखी परिवार– स्मिता को सब पसंद थे। स्मिता के लिए ये सारे विज्ञापन परिकथाओं का आनन्द देते थे। पर नहीं, स्मिता कभी आलोक को यह समझा न सकी। स्मिता अब चुप रहना सीख गई थी। चुप्पी! एक लम्बी चुप्पी! अब यह उसकी नियति ही हो गई थी।

स्मिता और आलोक एक विवाहित जोड़ा, जो 17 वर्षों से एक साथ थे। एक बेटा, पति–पत्नी तीनों का संसार। खुश, सम्पन्न संसार। एक परिवार, कुछ–कुछ वैसा ही जो विज्ञापनों में दिखाई देता है। 'And there after, they lived happily' वाला परिवार! पर नहीं वास्तविकता यह नहीं थी। वो दो व्यक्ति थे, एक स्त्री और एक पुरूष। गाड़ी से बंधे हुए दो अलग–अलग बैल जो गृहस्थी की गाड़ी से एक साथ ज्योते जाते थे।

स्मिता देख रही थी कि आजकल रणदीप भी उससे एक अदृश्य दूरी रखने लगा था। उसके लिए स्मिता पुराने युग की प्रतीत होती थी। वह स्मिता की बताई सावधानियों को उसका भय समझता था। उसके अनुशासन को दकियानूसी और उसके अनुभवों को बीतें हुये युग की

बेकार बातें! स्मिता को उसका अधिकांश समय मोबाईल की चमकती स्क्रीन से खेलना और इंटरनेट की तीव्र गति को तलाशना बिलकुल पसंद नहीं था। वह उसे कुछ समझाने की कोशिश करे तो उसके संवाद सुनने का धैर्य उसमें नहीं था। उसे किसी चीज की प्रतिक्षा नहीं, तात्कालिकता चाहियें रहती। उसे सलाह नही स्वीकृती चाहियें रहती। स्मिता विरोध करती तो आलोक उसे स्वीकृती देता था। यह कहते हुए, ''दुनियां बदल गई है स्मिता और तुम उसी पुराने संसार में अटकी हुई हो।'' स्मिता बहस करना चाहती नहीं थी और बात यहीं खत्म हो जाती थी। नतीजा रणदीप के लिए भी उसकी माँ 'ऑउटडेटेड़' प्रतीत हो रही थी।

स्मिता वह दिन कभी नहीं भूल सकती जब रणदीप का सोलहवां जन्म दिन था। उसके सारे मित्र आमंत्रित थे। घर पर ही पार्टी रखी थी। सुबह से स्मिता ने सारा घर सजाया था। रणदीप की पार्टी का सारा इंतजाम वह अकेली ही करती रही। फिर खुद गुलाब जामुन बनाया। सुबह से लगकर पसीना बहाकर सारा खाना खुद ही बड़े शौक से तैयार किया। 05:00 बजे बच्चों की पार्टी थी। हमेशा की तरह आलोक ने घर जल्दी आने का वादा करने का बावजूद, आखिरी समय जरूरी काम आने का फोन किया था। सारे बच्चे जमा हो गए थे। किसी बच्चे ने स्वाभाविक ही पूछा – ''तुम्हारी मम्मी क्या करती है?'' रणदीप ने बिलकुल अपने बाबा के लहजे में ही जबाव दिया, ''नहीं यार, मेरी मम्मी कहां कुछ करती है? बस, घर में ही रहतीं है। कुछ काम नहीं करती।'' रणदीप ने शायद बिना कुछ समझे ही बोल दिया था, पर स्मिता को यह बात दुखी कर गई। उसे यह बात चुभ गई थी। अभी तक तो आलोक ही था पर अब उसका अपना बेटा भी उसे नाकारा समझ रहा था। वह भी शायद यही मानता था कि घर में बैठने वाली स्त्री कोई काम नहीं करती और उसकी आई भी ऐसी ही एक स्त्री थी जो बस घर में बैठी हैं, कुछ नहीं करती!

आज अचानक स्मिता को ऐसा लगा कि जैसे उसके बच्चे ने भी उसकी हंसी उड़ाई हो। शायद अंजाने में ही सही पर वह भी अब उसे एक घरेलू वस्तु सा समझने लगा है। उस क्षण स्मिता के भीतर कुछ चुपचाप टूटा। उसने सोचा कि जिस बच्चे के लिए उसने अपनी इच्छाएं कुर्बान कर दी वह भी अब उसे नाकारा समझता है। क्या एक माँ का

सम्मान भी उसके घर के कामों की तरह इतना सामान्य हो गया कि अब उसे महसूस ही नहीं किया जाता?

अपने अश्रु पीकर स्मिता ने आज फिर मुस्कुराते हुए पूरी पार्टी सम्पन्न कराई। पर पूरी पार्टी में वह एक बार भी उन बच्चों के सामने नहीं आई यही सोच कर कि सारे बच्चे उसे 'एक नाकारा आई' की नजर से देखेंगे।

15

आज एम.बी.ए. की पढ़ाई पूर्ण कर एक बड़ी मल्टी नेशनल कम्पनी में प्लेसमेंट लेकर, रणदीप लौटा था। ऊंचा–पूरा, गोरा और अपने पिता की तरह घुंघराले बाल लेकर वह बड़ा ही हैंडसम लग रहा था। उसके आते ही स्मिता ने दरवाजे तक दौड़ लगाई और वह उसका माथा चुमने लगी। उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। पर रणदीप ने उसका हाथ झिड़कारते हुए कहां, ''क्या बच्चों की हरकत कर रही हो। अब मैं बच्चा नहीं हूँ।'' स्मिता सहम गई। अचानक उसकी नजर गाड़ी की तरफ गई।

गाड़ी में एक युवती बैठी हुई थी। रणदीप ने उसकी तरफ इशारा करते हुए कहा, ''आई, तुम्हारे लिए एक सरप्राईज है।'' स्मिता कुछ कहे या पूछें इसके पहले रणदीप ने कहा, ''आओ चंचल। वेलकम टू युअर न्यू हाउस। अपने घर में तुम्हारा स्वागत है।'' स्मिता एक ही पल में सारा माजरा समझ गई। गाड़ी से वह सुन्दर युवती उतर गई। जीन्स और टॉप पहने थी। सावला रंग था पर नाक–नक्श एक दम तीखे थे। बड़ी–बड़ी काली आँखें थी और कंधे तक कटे हुए बाल। उसके एक हाथ में पर्स थी और दूसरे हाथ में जो था उसे देखकर स्मिता को हैरानी हुई। उसके दूसरे हाथ की गोद में एक छोटा सा कुत्ता था। वह उस कुत्ते को चूमते हुए बोली, ''शेंकी! गेट डॉउन बेटा। हमारा घर आ गया। तुम्हें तकलीफ तो नहीं हुई। पुअर चाईल्ड थक गया बेचारा।'' कुत्ता देख स्मिता ने थोड़ा नाक सिकोड़ा। उसे कुत्ते कभी अच्छे नहीं लगते थे। पर अगले ही क्षण रणदीप का चेहरा देख उसने अपने आप को सम्भाल लिया। रणदीप की तरफ देखकर वह मुस्कुराई।

चंचल अपने दुलारे शैंकी के साथ स्मिता की तरफ ही आ रही थी। उसने आकर कहा, ''हाय आंटी।'' स्मिता ने भी बगैर कुछ समझे ही, ''हाय'' कह ड़ाला। रणदीप गाड़ी की डिक्की से सामान उतार रहा था।

वो ड्राईवर को कुछ निर्देश दे कर पुनः स्मिता के पास आया। ''प्रणाम करो चंचल शी इज माए मॉम! एंड नो आंटी डियर!'' दोनों ने झुककर स्मिता के पैर छुए। स्मिता बेहराई हुई सी निर्विकार चेहरे से वर्ताव कर रही थी। उसे सबकुछ समझ में आने के बाद भी वह कुछ नहीं समझ पा रही थी। अनायास उसने, ''खुश रहो'' कहा। वह कुछ कहे इसके पहले ही दोनों घर में प्रवेश कर चुके थे। उनके पीछे–पीछे स्मिता ऐसे अन्दर आई जैसे वह खुद ही मेहमान हो। रणदीप उसके पास पहुंचा और उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, ''आई, ये चंचल है। विदेश में मेरे साथ ही पढ़ती थी। उसके माता–पिता जर्मनी में रहते हैं। पर चंचल को भारत से बड़ा प्रेम है। जानती हो आई उसी के कहने पर हम दोनों ने भारत में पोस्टिंग ली है।'' वह चंचल की तरफ मुड़ा, ''अब आगे की कहानी चंचल तुम्हें समझाएगी।'' यह कहते वह अपने कमरे की तरफ चला गया।

चंचल और स्मिता दोनों आमने–सामने। दोनों ही के चहरे पर एक अजीब सी प्रतिक्रिया। दोनों ही के होठों पर चुप्पी। कहां से शुरू करें के असमंजस भाव दोनों को सता रहे थे। पर कुछ ही क्षणों में जैसे होश आ गया हो, स्मिता बोली, ''चलो तुम्हे–तुम्हारा कमरा दिखाती हूँ।'' वो उसे गेस्ट रूम की तरफ ले गई। यही सोच के कि किस कमरे में ले जाऊं। चंचल शायद स्थिति को समझ गई और हंसते हुए बोली, ''नहीं आंटी, हमने परसों ही कोर्ट मैरिज कर ली है।'' स्मिता की स्थिति तो ऐसी हुई कि काटो तो खून नहीं।

मतलब विगत एक हफ्ते से रणदीप भारत आ चुका था। मगर उसने कुछ बताना जरूरी भी नहीं समझा। उसके मन ने कहा, ''अरे बता देते तो क्या हम विरोध करते? आखिर हमारा एक ही तो बेटा है। क्या उसकी खुशी हमारी खुशी नहीं है?'' स्मिता के मन में विचारों का बवंडर उठ गया। वह यह समझ नहीं पा रही थी कि उसे खुश होना चाहिए या नाराज। हमेशा का स्मित हास्य अपने चेहरे पर बिखेरकर वह बोली, ''ओके–ओके फाईन बेटा।'' ऐसा कहते–कहते उसने चंचल का रूख रणदीप के कमरे की तरफ बढ़ा लिया। अचानक स्मिता के पांव में शैंकी आया। स्मिता लडखडाई। चंचल ने उसे गोद में उठाते हुए बोला, ''बेबी लगी तो नहीं? पुअर चाइल्ड। सब नया–नया है ना, थोड़ा घबरा गया है।'' स्मिता भी यही सोच रही थी। सब नया–नया है न। हो जाएगी,

इसकी भी आदत! सही मायने में स्मिता भी घबरा गई थी। एक क्षण में उसे अपना ही घर नया और पराया लगने लगा था।

अचानक उसको ख्याल आया, ''आलोक को तो बता दूँ।'' आलोक का ख्याल आते ही वह अब सचमुच में घबरा गई। ''पता नहीं आलोक इस मसले पर क्या प्रतिक्रिया देगा? नहीं तो एक और नया झमेला।'' कापती हुई ऊंगलियों से स्मिता ने आलोक को फोन लगाया। पहले दो कॉल तो उठे नहीं। हमेशा की तरह। तीसरे कॉल पर मैसेज आया, ''कान्ट टॉक राईट नाऊ, बीजी इन आ मीटिंग।'' स्मिता सहम गई। चंचल ने कमरे में जाकर दरवाजे बन्द कर लिए और स्मिता दरवाजे के बाहर चुपचाप अकेली खड़ी रही। दो क्षण वहां अकेली ही रूकने पर मुड़कर किचिन की ओर चली गई। महाराज खाना बनाकर जा चुके थे। स्मिता ने वहीं से अवाज लगाई, ''रणदीप! क्या लोगे? चाय बनाऊं?'' अन्दर से आवाज आई, ''हो आई, मैं तो चाय ही पीऊंगा पर चंचल चाय नहीं पीती। उसके लिए एक ब्लेक कॉफी बना देना।'' स्मिता मन ही मन मुस्कुराई और काम में लग गई। फिर भी उससे रहा नहीं गया। उसने आलोक को एक मैसेज कर ही देना उचित समझा, ''दीप इस बॅक। इट्स अर्जेंट।'' और स्मिता काम में लग गई। पहले अपना यूट्यूब खोलकर ब्लेक कॉफी की रेसिपी ढूंढने में लग गई। चाय बनाते–बनाते वो ब्लेक कॉफी बनाना सीख ही ली।

दरवाजे खुले। रणदीप और चंचल नहाकर बाहर आ रहे थे। स्मिता को वह दिन याद आया जब वह पहली बार इस घर में आई थी। डरी–डरी। सहमी–सहमी। चुपचाप। सास कहे तो उठ और सास कहे तो बैठ वाली पर पीढ़ियाँ कितनी बदल गई थी। चंचल बहुत ही सहज सी लग रही थी, मानो वो इस घर में वर्षो से रह रही हो। वह टेबल पर आकर बैठी, उसने कुकीज का डिब्बा भी खुद ही खोला और उसमे से एक शैंकी को खिलाकर वह ब्लेक कॉफी का सिप भी लेने लगी। रणदीप तो अभी आया तक नहीं था। सिप लेते ही बोली, ''वाव! ऑन्टी ग्रेट कॉफी।''

यहां तो आज सारा मामला ही उल्टा था। मेहमान की तरह ड़री–ड़री तो स्मिता थी। वो तो अब तक खड़ी ही थी। टेबल पर बैठना तक भूल गई। और चंचल उसे अच्छी कॉफी की दुहाई दे रही थी जबकि

दीप अब तक चाय तक पहुंचा भी नहीं था। फिर भी स्मिता मुस्कुराते बोली, ''थेंक्स बेटा'' रणदीप वहां आते आते बोला, ''आई, ये क्या बेटा–बेटा लगा रखा है? चंचल नाम है इसका। जस्ट चंचल।'' स्मिता फिर मुस्कुराई और बोली, ''चंचल! बड़ा सुन्दर नाम है बेटा।'' फिर से बेटा सुनकर दोनों ही हंस पड़े और दोनों को हंसता देख स्मिता भी।

इतने में फोन की घंटी बजी। आलोक का था। ''क्या हुआ? क्यों बार–बार परेशान कर रही हो। मीटिंग में था मैं। बी.ओ.डी. की मीटिंग थी पर तुम नहीं समझोंगी। हाँ, तो बोलो क्या हुआ?'' दीप ने उसके हाथ से फोन लिया और बोला, ''बाबा, दीप हियर। आय एम बॅक। आय हेव ए सप्राइज। जल्दी घर आ जाईए।'' रणदीप की अवाज सुनकर आलोक सारी झुंझलाहट पल भर में भूल गया और बोला, ''व्हाट ए प्लेझंट सप्राईज। आता हूँ एक घंटे में।'' कहकर आलोक ने फोन रख दिया।

स्मिता खुश हुई कि कम से कम दीप के नाम से तो आलोक जल्दी आएगा और उससे भी ज्यादा इसलिए खुश थी कि दीप–चंचल की राम कहानी उसे सुनानी न पड़ेगी। आएगा तो खुद ही देख लेगा। चंचल फोन पर बिझी थी। शायद अपने माता–पिता को यहां की खबरें दे रही थी। और रणदीप अपने फोन पर कुछ ऑफिस की बातचीत कर रहा था। स्मिता चुपचाप टेबल समेटने लगी। इतने में चंचल ने मुड़ कर कहा, ''आन्टी घर में बोर्नव्हीटा है क्या? बेबी को वही लगता है। नहीं हो तो उसे दो बिस्किट दे देना प्लीज।'' और वह पुनः फोन में लग गई। इच्छा न रहते हुए भी, सिवाए 'हां' कहने के स्मिता के सामने कोई विकल्प नहीं था। स्मिता ने उसे दो बिस्किट दिये। यह देखकर चंचल बोली, ''ऑन्टी, आज तो वो पारले जी खा लेगा। पर कल आप उसके लिए बादाम कुकीज बुला देना। वो वही खाता है और हां सुबह के लिए बोर्नव्हीटा जरूर बुलवाना। पुअर बेबी।'' कहते हुए उसने शेन्की को चूम लिया और उसे गोद में ही बिठाकर पुनः फोन पर लग गई।

आज आलोक 05:30 तक घर आ गया। बहुत खुश लग रहा था। क्यों नहीं हो? अपना बेटा ऊँचा पूरा विदेश से पढ–लिखकर लौटा है तो कौन बाप खुश नहीं होगा? रणदीप के गले लग कर दोनों बहुत खुश दिख रहे थे और उनकी खुशी में स्मिता की आँखों के किनारे खुशी के मारे नम हो गए। रणदीप के प्लेसमेन्ट की खबर सुनकर आलोक उसे

बधाई देने लगा। इतने में आलोक की नजर सोफे पर बैठी चंचल पर गई। ''युअर फ्रेंड!'' कहते आलोक उसकी तरफ हाथ बढाने मुड़ा। ''नहीं बाबा। फ्रेंड नहीं। आपकी बहू।'' कहते रणदीप ने उसे चंचल से मिलाया। चंचल भी खड़ी हुई और दोनों प्रणाम करने झुक गए। आलोक के चहरे पर आश्चर्य की लकीरें साफ–साफ दिख रही थी। फिर भी वह बड़े सहज होने का ढोंग रच रहा था। ''गुड'' कहते आलोक ने दोनों कंधे पर हाथ रखकर उठा दिया। ''अंकल, मैं चंचल। आई होप यु वोन्ट माइंड।'' कहते चंचल ने आलोक से हेंड़ शेक के लिए भी हाथ बढाया। आलोक ने स्मिता की ओर देखा। स्मिता ने केवल आँखों से हामी भर दी। ''नो डार्लिंग, वेलकाम होम।'' कहते हुए आलोक ने उससे हाथ मिलाया। ''पर डियर, मैं कोई अंकल–बंकल नहीं हूँ। मैं बाबा हूँ और वो तुम्हारी आई। हम दोनों, हमारे परिवार में तुम्हारा स्वागत करते है।'' कहते कहते आलोक स्मिता के पास पहुँच गया। आलोक ने स्मिता की तरफ देखते हुए कहा, ''अरे, बता तो देती। कुछ गिफ्ट तो लेते आता। इन दोनों के लिए।'' ''आपने मुझे कुछ कहने का मौका ही कब दिया।'' स्मिता ने हंसते हुए कहा। उसे कभी नहीं लगा था कि सारी राम कहानी इतनी सुलभता से सुलझ जाएगी। स्मिता का सारा तनाव खत्म हो गया। वह आलोक के रवैये को देख एकदम सहज और हल्का महसूस करने लगी।

चाय के टेबल पर बैठे–बैठे रणदीप ने कहा, ''आई–बाबा, आज हम लोग डिनर के लिए बाहर चलते है। ताज! हमारी तरफ से आप दोनों को यह भेंट।'' शाम 07:30 बजे तक बड़े उत्साह से सभी तैयार हो गए। अब स्मिता का परिवार बड़ा हो गया था। फला–फूला हो गया था। घर में बेटा–बहू के आने से स्मिता बहुत खुश थी। उसे यह लगा कि उसे अब एक साथी सहेली मिल गई है। घर का अकेलापन अक्सर स्मिता को खाने दौड़ता था। वह उस किटी–पार्टी सम्प्रदाय की नहीं थी। जब मौका था तो उसे नौकरी नहीं करने दी थी। बाद में वह बच्चे में व्यस्त हो गई। एक साल तक बिस्तर पर पड़ी सास की भी उसने बहुत मनोभाव से सेवा की थी। पापा जी के अचानक जाने के बाद स्मिता ने अपनी सासू जी का साथ कभी नहीं छोड़ा और आज घर में बहू को देखकर वह फूली नहीं समा रही थी।

छुटकी ज्यों चली गई तो केवल एक–एक दिन के लिए अपने माँ और पिता के देहांत के बाद आई थी। इधर आशुतोष! उसका अपना दादा! उसकी तो कोई खबर ही नहीं थी। उसका कोई सम्पर्क भी नहीं था। उसके आखिरी फोन पर उसने कॅनेड़ा शिफ्ट होने की बात कही थी। पर उसके बार उसका एक भी फोन तक नहीं आया। पर प्रति महिने उसके कहे अनुसार स्मिता को बाबा की दुकान के किराय के पैसे नियमित आते थे। बड़े भाई और भाभी के साथ रहने की स्मिता की इच्छा अधुरी ही रह गई थी। आज तक उसने अपनी भाभी को देखा तक नहीं था। याने स्मिता का मायका उसके बाबा के देहांत के बाद खत्म ही हो गया था।

स्मिता अकेली सी हो गई थी और आज उसके छोटे से घोसले का वह नन्हा पंक्षी अपनी उड़ान भरने निकल गया था। इतना ही नहीं आज वो अपने लिए अपने पसंद की दुल्हन भी लाया था। आलोक अपनी उन्नति की सीढ़ियां चढने में मशगूल था। आज कितने दिनों बाद, पूरा परिवार एक साथ था। स्मिता की खुशी का कोई ठिकाना न था। बेटे ने अपनी पसंद की बहू लाई इस बात का स्मिता को कोई ऐतराज नहीं था, पर दीप ने उसे बताना भी जरूरी नहीं समझा इस बात से वह दुखी जरूर थी। पर आज पूरा परिवार एक साथ देखकर उसे वह मलाल भी न रहा।

चंचल ऊँची पढ़ी–लिखी लड़की थी। उसके माता–पिता जर्मनी में ही स्थाई हो गए थे। उनका वहां बहुत बड़ा व्यवसाय था। चंचल भी रणदीप के ही कम्पनी में बड़े ओहदे पर थी। दोनों विगत 05 वर्षो से साथ–साथ रह रहे थे। लिवइन रिलेशनशिप में। वह दोनों अब शादी के रिश्ते में बधें थे। इसलिए विवाह का उत्साह, जोश, उनके अन्दर नहीं था और इसी के चलते उन्होंने यह बात बताना जरूरी भी नहीं समझा। उनके लिए यह सारा बहुत ही स्वाभाविक था। पर स्मिता के लिए सबकुछ इतना स्वाभाविक न था। उसकी बहू लाने की, बड़ा आयोजन करने की, धूम–धाम से शादी करने की बहुत इच्छा थी। कई बार तो वो ऐसे स्वप्न भी देखा करती थी। दिन– त्यौहारों पर बहू के नाम सोना–हीरे खरीदती रहती थी। पर आज सबकुछ स्वप्न ही रह गया। अचानक बेटा बहू को

लेकर ही आया और यह भी बता रहा था कि 05 वर्षों से दोनों एक साथ रह रहे थे।

फिर भी सबकुछ भूलकर स्मिता आज परिवार के साथ ताज में बैठकर बहुत खुश थी। उसके मन के आंगन में आज बसंत उतर आया था। उसने आज रात के भोजन के अवसर पर बड़े शौक से खरीदा हुआ सोने का कोल्हापूरी साज़ अपनी बहू को पहनाया। चंचल पर वह बहुत फब रहा था। उसे भी वह बहुत पसंद आया।

उसे साज़ पहनाते–पहनाते अचानक ही उसकी आँखे भर आई और उसे अपनी 'आई' का वो सोने का हार याद आया। वो आई का हार! वो उसकी अज्जी ने आई को दिया था। बारीक कारीगिरी और शाश्वत आकर्षण में निहित था। वह केवल आभूषण नहीं था बल्कि वो विरासत, कला और भावनाओं का प्रतीक था। यह पाराम्परिक हार पीढ़ी–दर–पीढ़ी की विरासत थी। वो हार स्मिता के लिए अपनी आई, अज्जी की यादें और पारिवारिक परम्पराओं की धरोहर थी। स्मिता को अच्छे से याद था। आई दिन त्यौहारों पर उसे अपनी पेटी से निकालती थी। पहनती थी और विजयंता आई से रोकर उसे पहनने की जिद करती थी। उसकी आई ने उसे बताया था कि उस हार को कोल्हापूरी साज़ कहते है। छुटकी से वो हार कभी लौटकर नहीं आया था। अश्रु से भरी हुई उसकी आँखे चंचल के गले के हार में वही हार देख रही थी और स्मिता सोच रही थी कि अपनी दादी और आई की वह निशानी वो आज अपनी बहू को पहना रही थी। स्मिता ने वह साज चंचल को पहनाकर उसका माथा चूमा और चंचल ने भी उसे गले लगाया और मुस्कुराते हुए बोली, "आई–आय लव यू"

रात खाने के वक्त आलोक ने एक बड़े आयोजन का प्लान बनाया। चंचल और दीप के विवाह की खुशी में। चंचल के माता–पिता को भी आमंत्रित किया गया और अगले ही हफ्ते होटल ली मेरेड़ियन में यह प्रतिभोज रखा गया। शानदार आयोजन में शहर के सभी नामी–गिरामी लोग उपस्थित हुए थे। दीप की शादी की दावत का माहौल मानो रंगो, रोशनी और संगीत का एक जीवंत उत्सव था। डांस फ्लोर पर थिरकते कदम और तालियों की गूंज जैसे रात को और जवान बना रही थी। स्मिता आज लाल पैठणी पहन कर बेहद खूबसूरत लग रही थी। इस

खूशी के मौके पर वह अपने आप को रोक ना सकी। आज तो उसने डांस फ्लोर पर भी अपने जलवे बिखेरे। अत्याधिक खुशी के मारे उसकी दिल की धडकने तेज, सांसों में मिठास और आँखों में चमक आई थी। चंचल के माता–पिता भी आए और दो दिन रूक कर चले गए।

समय एक अनमोल धरोहर है जो कभी किसी के लिए नहीं रूकता। पति, फिर ससुराल, फिर बच्चे करते–करते समय कहां उड़ गया स्मिता को पता ही नहीं चला। पहले अपनी आई, उसका स्वास्थ्य और घर, फिर पति, फिर ससुराल, फिर सास–ससुर की देखभाल करते–करते स्मिता को यह एहसास ही नहीं हुआ कि समय हवा की तरह बह गया था। बचपन कब बीता, स्कूल–कॉलेज कब पूरा हुआ, फिर विवाह, फिर बच्चा स्मिता की आँखों से सारा ही नजारा उड़ रहा था और आज उसके सामने बैठे थे– उसका अपना बेटा और बहू। स्मिता ने सोच लिया था कि वो अपनी बहू को इतना प्यार देगी कि वो अपने माता–पिता को भूल जाए। चंचल में वो एक बेटी, एक सहेली, एक सच्ची साथी देख रही थी। जो प्रेम स्मिता को न मिल सका वो सारा प्रेम वो अपनी बहू को देना चाहती थी।

शादी का रिसेप्शन होने के दो दिन बाद दीप और चंचल स्विटजरलैंड जा रहे थे। वहां घूमकर वो दोनों जर्मनी जाने वाले थे। चंचल के माता–पिता से मिलने के बाद वो अपनी जॉब की रिर्पोटिंग करने सिंगापुर जाने वाले थे। दोनों के कम्पनी के हेड–क्वाटर सिंगापुर में थे। याने दोनों लगभग महिना भर बाहर रहने वाले थे।

स्मिता यह कार्यक्रम जानकर थोड़ी उदास तो हुई पर बच्चे और उनके भविष्य, उनके अपने काम, सारा ही महत्वपूर्ण होता है। यह सोचकर स्मिता ने हंसते–हंसते उन्हें विदा किया। याने फिर घर में बचे दो ही प्राणी और उसमें से एक प्राणी अपने काम में व्यस्त तो बचा एक ही प्राणी। अकेली स्मिता। कहने को आलोक तो था पर उसका घर में रहना, ना रहना बराबर ही था।

सफलता और यश की ऊचाँईयाँ इतनी आसान नहीं होती। जाने अनजाने में ही सही परन्तु सफलता अक्सर हमें अपनो से, परिवार से दूर कर देती है। अपनी जिद, महत्वाकांक्षा, लक्ष्य और कैरियर में आलोक इतना व्यस्त हो गया था कि अपनो के लिए समय निकालना उसके लिए

बहुत मुश्किल हो जाता और खासकर स्मिता के लिए। स्मिता भी यह बात समझती थी कि कड़ी मेहनत, लम्बे–लम्बे घंटो का काम, यात्रायें, इन सारी भाग दौड़ में आलोक यह महसूस नहीं कर पा रहा था कि स्मिता घर में अकेली रहती है। उसकी भी कुछ इच्छाँए होती है। वह भी कुछ कहना चाहती है। वह यह भूल गया कि रिश्ते समय और जुड़ाव माँगते है। लेकिन जब हम अपनी जिद पर और लक्ष्यों में डूब जाते है, तो हम अपनो को वो समय नहीं दे पाते जिसकी उन्हें जरूरत होती है। आलोक के सिर पर बस सफलता और उन्नति ही छाई थी।

आखिर स्मिता भी तो एक मनुष्य थी। उसकी की भी तो भावनाऐं थी, कुछ करने की तम्मनाऐं थी। पर गृहस्थी के चलते उसने अपनी 'व्यक्तिगत' इच्छाओं को तिलांजली देकर गृहस्थी के गाड़े का ताल–मेल बनाकर, उसमें तेल डाल–डाल कर, खुद को जलाकर गाड़े को गतिशील रख रही थी। उसे गतिशील रखने में वह स्वयं को कुचलती जा रही थी।

16

रणदीप और चंचल चले गए। दो दिन में ही चंचल ने घर में अपनी उपस्थिति बना ली थी। हसमुख थी, बातूनी थी और स्मिता के साथ उसकी अच्छी पटरी बैठती नज़र आ रही थी। अब दोनों के जाने के बाद स्मिता को खालीपन का एहसास हुआ। दूसरे ही दिन आलोक ने ऑफिस से फोन किया और बोला, ''देखो मेरा बैग पैक कर दो। मुझे तीन हफ्तों के लिए यू.एस. निकलना है। मुझे कल ही निकलना पड़ेगा।'' वो ऑफिस से भी लेट ही आया। घर आने पर भी खाना खाते–खाते वो अपने लेपटॉप पर कुछ काम ही कर रहा था। स्मिता उसे उसका सारा प्रोग्राम पूछना चाहती थी। उसने यह भी मन बना लिया था कि आज वो उसके साथ जाने पर बात करेगी। पर ऐसा कुछ भी ना हो सका। वह देर रात तक लेपटॉप पर ही काम करता रहा। स्मिता ने उसका सारा सामान व्यवस्थित लगा दिया था। टाई, कोट, मोजे, रूमाल, जरूरी दवाईयाँ– सबकुछ। आलोक को उसकी की हुई तैयारी पर इतना भरोसा था कि उसने दोबारा अपनी बैग खोलने की जरूरत भी नहीं समझी। वह देर रात काम ही करता रहा और सुबह तड़के निकल गया।

दिन तो निकल गया पर घर में अकेली स्मिता रात को सो ना सकी। कमरे की खिड़की से घिरी रात की चादर सी चुप्पी उसे परेशान कर रही थी। उसकी आत्मा का हर कोना जैसे सुन्न संगीत की धुन पर थरथरा रहा था। आसमान में एकाकी तारे भी उदास होकर अपनी हल्की रोशनी बिखेर रहे थे। स्मिता की आँखों की ओझल नमी बारिश की बूदों सी धीमी रफ्तार से बह रही थी। उसका मन भी हाँफ रहा था, मन दर्द के उस समंदर में डूबता जा रहा था। इस दर्द ने स्मिता की आत्मा को भीतर से जकड़ लिया था। वह अपने भीतर के अनकहे जख्मों की परछाईयों से लड़ रही थी। आज बचपन की बातुनी विजया उदास थी,

अकेली थी। उससे बात करने वाला अब कोई नहीं था। उसकी दुनिया में बस खालीपन के शब्द गूंज रहे थे।

आलोक ने उसे कई बार समझाया, ''जाया करो। घूमो–फिरो। मित्रमण्डली बनाओ, किटी पार्टी करो। तुम्हें किस बात की कमी है।'' पर स्मिता तो गप्पों से भरा मित्रमण्डल, किटी पार्टी या ब्यूटी पार्लरों के चक्करों से दूर थी। उसे इन बातों में कतई मजा नहीं आता था। उसे इनका कोई शौक नहीं था। आज चारो तरफ उसके अपने अतिव्यस्त थे। किसी के पास स्मिता के लिए कोई समय नहीं था और धीरे–धीरे निशब्द रह कर स्मिता का यह दर्द उसके लिए नासूर बन रहा था। आनेवाले तीन हफ्ते वो क्या करेगी? यह वो सुबह अकेली चाय पीते–पीते सोच रही थी। आज अखबार पढ़ने में भी उसका मन नहीं लग रहा था। बैठे–बैठे उसे अचानक याद आया, उसका बचपन का घर।

उसका घर! उसकी यादों का घर! जीवन के सबसे स्वर्णिम पलों का वह आशियाँ। स्मिता उस छोटे से गांव से आती थी। उसका घर भी छोटा था। इतना आधुनिक भी नहीं था। मगर वो खूबसूरत, जीवंतता से भरपूर घर अब स्मिता को बैचेन कर रहा था। मिट्टी का बना वह घर, कच्चा घर। खपरेल घर। घर के मुख पर पतली लकड़ी के खम्बों पर टिका एक बड़ा सा बरामदा, जहाँ दो–तीन कुर्सियां सदा ही मेहमानों का इंतजार करती रहती थी। उसके बाबा के व्यवसाय के चलते, घर में लोगों का आना जाना लगा ही रहता था। घर के सामने बड़ा मधुकामनी का वृक्ष! जिसके सुन्दर पुष्प और सुगंध से सारा मोहल्ला पुलकित हो जाता था। उसके बाजू में बना तुलसी का चबूतरा। सुबह–शाम आई तुलसी के सामने जल चढाती और संध्या समय बिना भूले एक दीपक जलाती थी। सूखे चावल की बनी रंगोली तुलसी के सामने डालना, विजू का रोज का काम हुआ करता था। दुमंजिला वह मकान सादा था पर जीवंत था। बरामदे की दीवार पर फूल की मालाओं के चित्र बने थे। उसने मानो उस दीवार को एक चित्रशाला ही बना दिया था। मधुकामनी की बहार संध्या समय धूप ढलते ही आती थी। हल्की हवा की सरसराहट चारो ओर खुशबू बिखेरती और एक सुकून का वातावरण फैल जाता था।

सादगी के इस घर में जीवन का एक अनमोल सुख व्याप्त था। यहां सबकुछ सरल था, साधारण था और सम्पूर्ण था– सारी यादों ने

स्मिता की आत्मा को मानो ठंडक दे दी थी। यहां छोटी–छोटी खुशियाँ थी। अपनापन और शांति का एहसास था और बड़ा सा बंगला, घर के सामने खड़ी दो–दो महंगी गाड़ियाँ, घर के सामने एक बड़ा सा लॉन और लॉन पर बना वो फव्वारा– सबकुछ था पर रूका–रूका सा था। उसमें जीवन चहकता नहीं था।

और आज स्मिता अकेली इस बड़े से बंगले में सुख सुविधाओं के बीच अपने आप को एकाकी पा रही थी। एक दम अकेली। जैसे बड़े तालाब में एक अकेला हंस! स्मिता ने फटाफट चाय खत्म की और वह तैयार हो गई। उसने ड्रायवर मनोहर को आवाज दी, ‘‘चलो किशनपुर चलना है।’’

मनोहर किशनपुर, उसके अपने घर की तरफ गाड़ी दौड़ाने लगा। पूरे रास्ते, स्मिता खिड़की से बस इधर–उधर देख रही थी। आज उस रास्ते पर वह कितने साल बाद आई थी। शायद 22 साल बाद। रास्ते का तो सारा नक्शा ही बदल गया था। उस जमाने में एक कच्ची छोटी सड़क हुआ करती थी और वह भी खराब स्थिति में। 100 किलो मीटर की वह दूरी पार कर शहर आते–आते तब साड़े तीन से चार घंटे लगते थे। आधे रास्ते पर एक छोटी होटल हुआ करती थी। वहां वड़ापाव बड़ा अच्छा मिलता था। शहर आते हुए सारी गाड़ियाँ हो या बसें वहां जरूर रूकती थी। जैसे वहां का वड़ापाव खाए बगैर जाना मानो कोई अपराध हो।

आज वहां फोरलेन रोड़ बन चुका था। वह छोटा सा होटल अब रेस्टोरेन्ट एंड रिर्सोट का बोर्ड बड़े अक्षरों में लगाकर अभिमान से ड़ोल रहा था। आज भी स्मिता वहां रूकी और उसने वहां वड़ापाव खाया। आज भी वही स्वाद, स्मिता अचानक मुस्कुराई। उसने मनोहर को भी खिलाया, ‘‘यह बहुत पुरानी जगह है। यहां मैं अपने आई–बाबा के साथ आया करती थी। तुम भी खा लो, ऐसा वड़ापाव तो तुम्हे पूरे शहर में नहीं मिलेगा।’’ स्मिता बड़े अभिमान से बोल रही थी। मानो वह अपनी खुद की दुकान की बात कर रही हो।

किशनपुर पहुंचते–पहुंचते तो सारा नक्शा ही बदल गया था। स्मिता ने दो बार पूछकर ही उसकी गली का रास्ता खोजा लेकिन जैसे ही वह उस गली की तरफ मुड़ी, वह अचानक गंभीर हो गई। पुरानी सारी यादें

उसकी आँखों को नम कर रही थी। बाबा के जाने के बाद तुरंत ही दादा ने निर्णय लेकर विदेश जाने का एलान किया था। इसलिए स्मिता को यहां आने का कोई प्रायोजन ही नहीं बचा था। पर आज वो पुनः अपने बचपन की ओर मुड़ रही थी।

सारा नजारा देखते—देखते स्मिता को कब किशनपुर आया पता ही नहीं चला। ड्रायवर ने उससे पूछा, ''मेडम, हम किशनपुर तो पहुंच गए है, पर यहां से आंगे का रास्ता तो आपको बताना पडेगा। कुछ पुराने संकेत जैसे पोस्ट ऑफिस, उसका स्कूल, वह गांधी जी की मूर्ति देखते—देखते स्मिता रास्ता ढूंढने की कोशिश कर ही रही थी कि अचानक उसकी नजर उस दुकान पर पड़ी, ''अरे रूको—रूको! ये तो हमारी ही दुकान है।'' स्मिता ड्रायवर को रोकते हुए बोली। बाबा की वो दुकान अब अनाज का एक मॉल सा हो गया था। स्मिता गाड़ी से उतर कर डरते—डरते दुकान में गई।

वहां के काउंटर पर एक बुढे से दादा जी बैठे थे। वही धोती, टोपी और काली फ्रेम का गोल चश्मा! स्मिता ने उन्हें पहचान लिया। वो उनके सामने जाकर खड़ी हुई और बोली, ''चाचा पहचानते हो मुझे?'' उन्होंने चश्मा ऊपर—नीचे कर स्मिता को देखा और झट से पहचान भी लिया, ''तुम, विजू बेटी हो ना?'' स्मिता ने खुश होकर सिर हिलाया। वह भी बड़े खुश हो गए। उन्होंने स्मिता को अपने पास गद्दी पे ही बिठाया और पानी बुलवाया, ''इतने बरसों बाद हमारी याद कहां से आई? तुम ससुराल क्या गई तो हमे भूल ही गई।'' अबतक चाय भी आ चुकी थी। स्मिता ने कांच के ग्लास की वह चाय फुरर—फुरर आवाज करते पी और बोली, ''घंसू चाचा आप तो अब भी वैसे के वैसे हो, बस थोड़े बूढे हो गए हो?'' और वह हंस दी।

घंसू चाचा लगभग रोज ही विजू के घर पर आया करते थे। जब वह स्मिता के बाबा से किराना लेकर अपनी मोटरसाईकल पर गांव—गांव हाट बाजार में अनाज की दुकान लगाया करते थे। उन्होंने विजयंता को बहुत बचपन से देखा था। किशोरी लाल जी के अचानक जाने का उन्हें आज भी बहुत दुख था। वह तत्काल अपने काउंटर से उठे और चलो—चलो कहते हुए स्मिता को घर ले जाने लगे। ''चाचा, चाची खैरियत से है?'' ''बिलकुल विजू बेटी। अब चलकर तुम ही देख लो। पर अब

चलने मे समस्या होती है। तो वो घर पर ही रहती है। तुम्हे देखकर वह बहुत खुश होगी।'' ''चाचा जरा पहले घर तक तो हो आऊं।'' स्मिता ने कहां। ''नहीं–नहीं पहले चाय नाश्ता करों और फिर घर जाना अब तो वहां रखा ही क्या है। सालों से बन्द पड़ा है।'' चाचा जी ने ठंडी सांस भरते कहा। स्मिता कुछ नहीं बोली और उनके साथ चल दी।

घर जाते ही चाचा जी ने चाची को कहा, ''पहचानो आज कौन आया है?'' चाची जी एक क्षण कुछ सोचती रही और तत्काल ही बोल पड़ी, ''अरे! विजू! कितनी बड़ी हो गई हो और कितनी सुन्दर! तुम बिलकुल नहीं बदली।'' कहते उन्होंने स्मिता को गले लगाया। उनका गले लगना मानो स्मिता के बंधी हुई संवेदनाओं का तालाब फूट जाने जैसे हुआ। ''चाची'' कहते हुए स्मिता फूट–फूट कर रोने लगी। चाचा–चाची दोनों ही सहम गए। ड़रते–ड़रते चाचा जी ने पूछा, ''सबकुछ ठीक तो है? आशु कहां है?'' ''सबकुछ बहुत अच्छा है पर आप लोग मिले तो आज आई–बाबा को मिलने का एहसास हुआ। अनायास ही रोना आ गया।'' कहते हुए स्मिता ने अपनी आँखे पौंछी। इतने में नन्दू आ गया। उसे देखकर स्मिता बोली, ''नन्दू पहचानों'' ''अरे विजू ताई!'' नन्दू ने तुरंत ही पहचान लिया। नन्दू स्मिता से दो वर्ष छोटा था पर बचपन में दोनों खूब खेला करते थे। अब वह उस बड़े होल सेल अनाज मॉल का मालिक था। अच्छा खासा धनवान भी हो गया था। आते हुए वो स्मिता के खास पसन्द के सबसे पुराने दुकान से समोसे भी लेते आया था। खूब गप्पें छिड़ गई।

पिछले 30 सालों में स्मिता इतनी खुश कभी न दिखी थी। नन्दू के घर से बस चार घर छोड़कर ही विजया का घर हुआ करता था। चाय, समोसे और गप्पे पर विराम लगाते हुए स्मिता ने, ''घर जाकर आती हूँ'' कहते हुए वहा से विदाई ली। नन्दू भी उसके साथ चल दिया। दोनों बाते करते करते वही पुरानी गली नाप रहे थे। नन्दू चलते–चलते प्रत्येक घर की कहानी सुना रहा था। कहानियाँ सुनते–सुनते अचानक स्मिता अपने घर के दरवाजे पर आकर खड़ी हुई।

आंगन पूरा कचरे से भरा था। फाटक का दरवाजा बन्द था और उसपर बूढा सा ताला लटक रहा था। उस ताले को जंग लगी थी। उसके अन्दर से एक और बूढा ताला मानो स्मिता को बुला रहा था।

फाटक पर स्मिता स्तब्ध बनकर खड़ी रही। वो मधुकामनी का पेड़, उसके बाजू का तुलसी कोट सारे ही बूढे हो चुके थे। तीन–चार मिनिट की निस्तब्धता के बाद स्मिता अचानक बोली, ''अरे! मैं तो चाबी लाना ही भूल गई।'' उस फाटक के सामने खड़े होकर स्मिता अपना पुराना घर नन्हीं विजू की नजरों से देख रही थी। घर की हालत देखकर उसका मन बहुत दुखी हो गया। कई सालों से घर खुला तक नहीं था। चमगादड़ों ने उसमें अपनी कॉलोनी स्थापित की थी और लावारिस कुत्तों का वह अड्डा हो गया था। घर की यह हालत स्मिता से देखी ना गई। नन्दू ने ताला तोड़ने की बात कही पर स्मिता ने ''नहीं, फिर आऊंगी चाबी लेकर'', कहते हुए झट से पीठ फेर ली। उसने नन्दू को कहा, ''आज तो बस यहां से गुजर रही थी इसलिए आई। मुझे जल्दी वापस भी जाना है। मुझे निकलना होगा।''

स्मिता गाड़ी में बैठी ही थी कि इतने में घंसू चाचा दौड़ते हुए आ रहे थे। उन्होंने आवाज लगाई, ''अरे बेटी जाना नहीं तुम्हारी चाची ने बुलाया है। कुछ जरूरी काम है।'' स्मिता, नन्दू और चाचा के साथ वापिस पैदल जाने लगी और गाड़ी को उसने वही बुला लिया। घर पहुंची तो चाची उसका इंतजार कर रही थी। उन्होंने स्मिता को, अपनी विजू बेटी को, एक सुन्दर साड़ी देते हुए उसकी ओली भर दी। ''अरे बेटी, मायके आई हो, खाली हाथ कैसे जाने दूंगी?'' कहते हुए चाची ने उसका माथा चूमा। उनके कांपते हुए नर्म और गर्म हाथों ने स्मिता को एक अजीब से सहारे की अनुभूति कराई और मन ने कहा, ''काश आज आई–बाबा भी इतने बूढे होते।'' आँखों से आए आसुंओं को छुपाते हुए स्मिता गाड़ी में बैठ गई। गाड़ी पुनः दौड़ने लगी। अम्बिकापुर की तरफ! गाड़ी में चाचा के शब्द स्मिता को बार–बार याद आ रहे थे, ''बेटी विजू, जब इच्छा हो आ जाया करो। किशोरी भाई–भाभी नहीं तो क्या हुआ? हम लोग तो है। अब की बार हफ्ता भर रूकने के लिए आना।''

स्मिता इतनी दूर जाकर भी बिना अपने घर में घुसे ही वापस लौट आई थी। सच बात तो यह थी कि उसने जानबूझ कर ही घर को नहीं खोला था। उसके पास सारी चाबिंयाँ थी पर इतने वर्षो से बन्द घर की हालत ने उसे परेशान कर दिया था। आज अकेली, घर खोलने की उसकी हिम्मत भी नहीं पड़ रही थी। बिना आई–बाबा के वह घर में कैसे

जाती? दादा भी नहीं था और दादा को गए इतने साल हो गए थे। पर उसने स्मिता के हाल जानने की एक बार भी कोशिश नहीं की थी। यह बात स्मिता को भुलाई नहीं जा रही थी। वह सोचने लगी, ''जिस प्रेम और अनुराग से वो मेरी शादी में रोया था, विदाई के वक्त मेरे सिर पर हाथ रखकर मुझे चूम रहा था वो बड़ा भाई आज कहां था। बाबा के अंतिम समय में 'मैं हूँ ना' कहने वाला वो बड़ा भाई क्या उसे भूल गया था? क्या उसे मेरी जरा भी याद नहीं आती?'' यह सोचकर स्मिता का सिर भारी हो गया था। उसे वह बन्द घर देखकर अपने अकेले, एकदम अकेले होने की पीड़ा इतनी गहरी थी कि बड़े साहस के साथ बन्द घर को ना खोलना ही उसे उचित समझा था। उसमे आई–बाबा की अनुपस्थिति की पीड़ा उससे सही नहीं जा रही थी। अचानक उसके जीवन में एक शून्य उभर आया जो कभी नहीं भर सकता। वो पुरानी यादें। बिना दस्तक दिये लौट आई थी। दीवार पर बने वो सारे चित्र धुंधले जरूर हो गए थे पर उसकी यादों की दीवार पर वह उभर कर आए थे। स्मिता ने सोचा समय भले ही आगे बढ गया हो पर वह यादें वही अटकी थी, किसी पुराने मौसम की तरह, जो अब भी दिल की खिड़कियों में दस्तक दे रहा हो।

17

स्मिता वापस घर पहुंची। दौड़ते हुए नौकर आया, ''मेमसाब आप क्या चली गई तो शैंकी ने खाने को छुआ तक नहीं। विचारा एक कोने में गुम–सुम बैठा है।'' इतने में शैंकी दौड़ता हुआ स्मिता के पास आया। उसके ऊपर कूंदने लगा, गोद में बैठने ललचाने लगा। स्मिता की आहट सुनते ही वह मूक जीव हर्ष से उछल पड़ा था। उसकी आँखे खुशी से चमक रही थी। जैसे सूने दिनो की तन्हाई को अचानक किसी रंगीन कर दिया हो। उसकी पूछ बेसुध लहराने लगी। मानो वर्षों की बिछड़न एक पल में मिट गई हो। उसकी आँखों में नमी थी– जो निश्चल और सच्चा प्रेम बयाँ कर रही थी। ऐसा भाव था जिसे केवल अपना ही व्यक्त कर सकता है। उसे देख स्मिता ने भी उसे गोद में उठाया, ''नो बेटा, मैं आ गई ना।'' स्मिता के मुख में शब्द आए जैसे सीधे ह्रदय के बोल हो। स्मिता उसे लेकर सोफे पर बैठी और उसने उसे अपने हाथों से खाना खिलाया। शैंकी उस क्षण से स्मिता का सच्चा साथी बन गया। वो दिनभर स्मिता के आगे–पीछे ही रहता था। भौंक–भौंक कर अपनी भाषा में उससे बात करता था और हट भी करता था। इस हादसे ने स्मिता को किशनपुर वाली दुखी यादों को भुला दिया। चाहे कुछ क्षणों के लिए क्यों ना हो?

स्मिता को अब उस भोले से शैंकी से प्यार हो गया। वह अब उसके परिवार का सदस्य हो गया था। दिनभर स्मिता भी उससे बातें करती थी। वो स्मिता के साथ लॉन में खेलता, कूदता, उछलता और शैतानी करता और स्मिता उसके पीछे दौड़–दौड़कर ड़ाटते–फटकारते रहती तो कभी उसे गले लगाकर यूं ही हंसती रहती। स्मिता के अकेलेपन का वह सच्चा साथी बन गया। उसने स्मिता का अकेलापन काफी हद तक दूर ढकेल दिया था।

समय बीत गया। आलोक लौट आया था। उसकी इस यात्रा में उसने चार बार फोन लगाया था। पर उसमें से तीन बार उसने केवल

अपनी फाइलों की कुछ फोटो के लिए फोन किया था और एक बार बस उसने स्मिता के हाल–चाल पूछें थे, यह कहते हुए कि क्या करूं काम में इतना व्यस्त था कि ज्यादा बात हो ही नहीं सकी। परन्तु स्मिता को एक तसल्ली थी कि चंचल हफ्ते में दो बार फोन जरूर लगा रही थी। वह स्मिता से लम्बी बातचीत करती और उसके सारे हाल–चाल पूछती भी थी और बताती भी थी। पर एक बात ने स्मिता को हंसा दिया कि अंत में वो कम से कम पांच मिनिट शैंकी के हाल–चाल जरूर पूछती थी। स्मिता भी चंचल को शैंकी की भों–भों सुनाना नहीं भूलती।

समय तेजी से गुजर रहा था। दीप और चंचल अब भारत में सेट हो गए थे। दोनों के ऑफिस कामकाज ने व्यवस्थित गति पकड़ ली थी। पर सबकी दिनचर्या आज भी वैसी ही थी। सुबह 08:00 बजे सारे नाश्ते के टेबल पर मिलते थे। सबको गरम–गरम नाश्ता कराना स्मिता का ही काम था। बचपन में रात में 'आई' उसे दूसरी सुबह के सारे काम समझाती थी और विजू आई के बताये अनुसार सुबह से काम पर लग जाती थी और अब स्मिता रोज रात को सोने के पहले खुद ही कल सुबह के नाश्ते का मीनू तय किया करती थी। नाश्ता कर तीनों कामकाजी प्राणी घर से निकल जाते थे और रह जाती अकेली 'पुअर हाऊस वाईफ। हू ड्ज नथिंग।'

सही भी था सभी काम करते थे। ऊँचे ओहदे पर थे। बड़ी तनख्वाह पाते थे। उनका रूतबा था। पर स्मिता का ऐसा कुछ भी नहीं था। ना रूतबा और ना ही तनख्वाह। वह तो बस एक गरीब बेचारी गृहणी थी और घरवालों के अनुसार, ''वो कुछ नहीं करती, घर में ही रहती है।''

स्मिता सब के जाने के बाद कारवाँ लगाकर आज भी पुराने गाने सुनती थी। घर में कोई ना हो तो वो कभी–कभी गुनगुनाती भी थी। फिर मशीन में कपड़े और पूरे घर का ड़स्टिंग भी खुद ही करती थी। ऐसा नहीं कि नौकर नहीं थे पर स्मिता को यही लगता था कि इतनी शौक से उसने सजाया हुआ घर, उसका हर सामान व्यवस्थित रखना स्मिता की पुरानी आदत थी। घर की हर एक चीज साफ करते–करते वो उसकी कहानियों में गुम हो जाती थी। शौक से बनाए हुए और सजाए हुए उस घर की प्रत्येक चीज की अपनी एक कहानी थी। इन कहानियों में गुम स्मिता का सुबह का समय चला ही जाता था।

चंचल तो घर में आई थी पर उसे यह सब काम करने में मजा नहीं आता था। वह अक्सर स्मिता को कहती थी, ''आई आप क्यों करती रहती हो? नौकर कर लेंगे ना।'' पर प्रत्येक चीज से लगे हुए उस लगाव का स्मिता चंचल को क्या बताती? वह यही सोचती के मेरे जैसा काम करने उसके पास समय ही कहां है? वो बस तैयार होकर ही कमरे से बाहर निकलती थी। कभी–कभी नाश्ता नहीं किया या लेट हो गई तो स्मिता याद से ड्रायवर के हाथों उसका डब्बा भी भेजती थी। पर वह बस ''आई मी जाते'' कहकर घर से निकल भी जाती थी। उसने कभी घर के कामों में रूचि लेना अपनी जिम्मेदारी भी नहीं समझी। स्मिता को अनेकों बार लगता था कि दोनों मिलकर घर की सजावट करें, साथ काम करें, घर में कुछ नया लायें पर चंचल इन सबसे दूर ही थी। इसके लिए चंचल के पास ना तो समय था, ना ही रूचि। स्मिता अक्सर खुद को समझाती थी, ''वह बड़े ओहदे पर काम करती है उसे अपने ऑफिस के कई टेंशन रहते हैं।'' अपने मन को समझा–बुझाकर ज्यादा सोचने पर मन पर पाबंदी लगा देती थी।

लेकिन मन तो मन है। वह अक्सर भटक ही जाता है। दीप का भी यही हाल था। वो अपने पिता के पद चिन्हों पर चल रहा था। ऊँचाईयों पर उड़ने की उसकी महत्वकांक्षाओं ने उसे भी बहुत व्यस्त कर दिया था। पर उसमें एक बात जरूर थी, जो आलोक में नहीं थी। प्रत्येक शनिवार को रात्रि भोज पर दोनों अक्सर घूमने बाहर निकल पड़ते थे और रविवार की छूट्टी भी दोनों एक साथ ही बिताते थे। अक्सर किसी रिसोर्ट पर!

स्मिता अपने बच्चों के भविष्य और भलाई को लेकर चुप ही रहती थी। वह हर परिस्थिति में अपने परिवार की खुशियों को प्राथमिकता देती थी। उसकी सोच में त्याग, ममता और सहनशीलता ने उसे एक अद्भुत इंसान बना दिया था। एक ऐसा इंसान जो निशब्द था, चुप था, सदैव मुस्कुराता था। बिलकुल अपने नाम की तरह सदैव स्मित हास्य होंठों पर फैलाकर सब की खुशी में अपनी खुशी ढूंढ़ने वाला।

सब की जिंदगी तेज रफ्तार से आगे बढ रही थी। मगर स्मिता की जिंदगी में एक ठहराव था। सब के इस भागदौड़ भरी जिंदगी में बस स्मिता की जिन्दगी घर के चार दिवारों के अन्दर ही रूकी थी। उसकी

जिंदगी में कोई रोमांच नहीं बचा था। उसकी दिनचर्या में सालों से कोई परिवर्तन ना था। इस ठहराव से उसे अब निराशा और अजीब सा ऊबाऊपन लगने लगा था। वह अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में असमर्थ सी हो गई थी और भीतर ही भीतर घुट रही थी। उसे यह बात अक्सर मन में आती कि वह भी कुछ अनुभवों को अपनाएं और अपने जीवन को उत्साह से भर दे। उसका मन उसकी नियत स्वभाव से विद्रोह करता था। उसमें काफी उछलकूंद मचती थी। यह विद्रेही मन उसे कहता था, जिन्दगी का असली सौन्दर्य उसके बहाव में ही है, उसे बहने दो। अनियंत्रित होकर बहने दो। जैसे हवा। उसे अपने रूख को खुद ही तय करने दो। उड़ जाओ ए पंक्षी उड़ जाओ।''

पर स्मिता कुछ भी बोल ना पाती थी। आलोक को वो अपनी दिल की बात कह नहीं पाती थी और आलोक के पास उसे देने के लिए समय की कमी थी। यह ठहराव धीरे–धीरे उसे निराशा की ओर ले जा रहा था। उसकी मानसिक स्थिति पर असर कर रहा था। पारिवारिक जिम्मेदारियों में जकड़कर स्मिता स्वयं के सपनों और इच्छाओं को पीछे छोड़ चुकी थी। उसकी जिन्दगी बाहर से तो शांत, संतुष्ट, स्थिर और सुखी दिखती थी पर अन्दर से वह अकेलापन, खालीपन और अब अक्सर निराशा का अनुभव करती थी। वह धीरे–धीरे एक ऐसी स्थिति में पहुंच गई थी जहां वह खुद को पहचानना भी बन्द कर चुकी थी।

स्मिता इससे निकलने की कोशिश भी करती थी पर स्टेटस, आलोक की पोजिशन, बच्चों की अपनी प्राथमिकताऐं उसे पीछे ढ़केल देती थी। जीवन एक बहती नदी सा होता है। अगर वह बहता रहे तो निर्मल होता है पर यदि उसमें ठहराव आ जाये तो वह पानी गंदा और भारी हो जाता है। स्मिता के साथ भी कुछ ऐसा ही था।

जीवन एक सत्त प्रवाह है, जिसमें गति, परिवर्तन और नवीनता उसके मूल तत्व है। अब स्मिता की जीवनशैली ही नहीं बल्कि उसकी सोच और अनुभवों में भी जड़ता आने लगी थी। वह अपने सपने और रूचियों को भूलने लगी थी। वह केवल अपने कर्तव्यों को निभाना जानती थी। वह इन परिस्थितियों में इतनी व्यस्त रहती थी कि उसके भीतर अब कोई भावनाऐं, आकाक्षांऐ जीवित नहीं थी।

उस दिन की बात है, पास वाले थियेटर में गिरीश कर्नाड़ द्वारा लिखित नाटक नाग मंडल का शो होने वाला था। बम्बई की मशहूर संस्था यह नाटक खेलने वाली थी। नाटक का विज्ञापन आते ही स्मिता ने शो की प्रथम पंक्ति की दो टिकटें निकाल ली थी। वह रविवार का दिन था इसलिए उसने आलोक का चलना भी ग्राह्वय मान लिया था और उसने आलोक को राजी भी कर लिया था। सुबह से स्मिता बड़ी ही उत्साहित थी। उसे अपने बी.ए. द्वितीय वर्ष में किया हुआ यह नाटक याद आ रहा था। स्मिता ने उसमें रानी का किरदार निभाया था। सारा नाटक उसकी आँखों के सामने नाच रहा था। आज भी उसे सारे डायलॉग कंठस्थ थे। उसने जल्दी–जल्दी घर के सारे काम निपटा लिए थे।

स्मिता ने सुन्दर साड़ी निकाली और बड़े शौक से तैयार हो गई। रात 08:00 बजे का शो था। रविवार होने के बावजूद 05:00 बजे आलोक ने एक जरूरी पार्टी में जाना है कहकर उसका मूड़ ही खराब कर दिया था। पर आज बड़ा साहस कर वह अकेली ही जाने को तैयार हो गई। अपने कमरे से वह निकलने के लिए बाहर ही आ रही थी। तो दीप ने कहा, ''आई, हम लोग जरा मित्रों के गेट टू गेदर में जा रहे है। डिनर बाहर ही लेंगे। आते–आते 12:30–01:00 बज ही जाएगा। रूद्र अन्दर सो रहा है। तुम कब तक जगोगी? ऐसा करो तुम उसे अपने कमरे में ही सुला दो।'' कहते हुए बिना कुछ देखे सोचे समझे दोनों फुर्र हो गए। आलोक तो पार्टी के लिए निकल ही चुका था। अब घर में अकेली बची स्मिता और वह सोया हुआ बच्चा। स्मिता से रहा नहीं गया और वो दरवाजे में टिक कर रोने लग गई। उसे चुप कराने घर में कोई नहीं था। बल्कि बच्चा ना उठ जाए इस डर से वह खुद को सम्भालती हुई रूद्र के कमरे तक पहुंची। बच्चा शांति से सो रहा था। उसका भोला चेहरा किसी ईश्वरीय चेहरे से मेल खा रहा था। वह हल्का मुस्कुराया और उसने करवट बदल दी। स्मिता भावनाओं से ओत–प्रोत निचुड़ गई। उसने बच्चे को उठाया, गले लगाया और चुपचाप उसे अपने पलंग पर ले आई।

बिस्तर पर पड़े–पड़े वह दुखी मन से यही सोच रही थी कि उन्होंने मेरे बारे में कुछ भी नहीं सोचा मैं भी तो तैयार होकर ही खड़ी थी पर उन्होंने यह पूछना जरूरी नहीं समझा कि मैं कहां जा रही हूँ। पहले से

वो बता भी सकते थे पर उन्होंने चर्चा तक नहीं की थी। स्वाभाविक स्मिता के मन में आया कि मेरे अपने बच्चे तक तो ठीक था पर क्या अब उनके बच्चों को देखने की जिम्मेदारी भी मेरी ही है। उसके मन ने उसकी हंसी उडाते हुए कहा, ''तुम्हें क्या काम है? घर में जो बैठी रहती हो।''

18

रणदीप और चंचल का बेटा था रूद्र। अभी केवल एक साल का था। अब स्मिता की दुनिया उसके इर्द–गिर्द ही घूमने लगी थी। चंचल पर काम का बोझ था। उसका अभी–अभी प्रमोशन हो गया था। रूद्र सवा महिने का था तब ही से उसने ऑफिस ज्वाइंन कर लिया था। स्मिता ने उसे छुट्‌टी बढाने को कहा था पर उसने स्पष्ट जवाब दे दिया था, ''अब बच्चे ही पालती रहूंगी कि अपना कैरियर बनाऊगी? ये तो आप की जिद थी कि हमने संतान के बारे में विचार किया। नहीं तो अभी हमें यह सम्भव भी नहीं था। आप तो घर में ही रहती हो और बच्चे के लिए मैं एक और नौकरानी लगा दूंगी। इट्‌स सिम्पल।'' पर स्मिता के लिए सबकुछ इतना आसान नहीं था। ऐसा नहीं था कि वह इस सुन्दर नाती की देख–भाल नहीं कर सकती थी पर उसे चंचल की बहुत सी बाते पसंद नहीं आ रही थी।

वह अपना दूध निकाल कर फ्रिज में रख जाती थी और समय–समय पर स्मिता ही उसे गरम कर पिलाती थी। दिन भर बच्चे को डायपर पहनाना स्मिता को बिलकुल पसंद नहीं था। बच्चे के मूंह पे निप्पल डालकर रखना भी स्मिता को गवारा नहीं थी। पर उसकी एक ना चली। बच्चे को पालने के यह सब नए तरीके हैं कह कर वह चुप हो गई।

एक बार स्मिता ने अपने मन की बात चंचल के सामने कह भी ड़ाली, तो बवाल ही हो गया। ''आई तुम्हे नए–नए तारीके कुछ समझ में तो आते नहीं है। तुम आज भी हम लोगों से पुंतरियां क्यों धुलवाना चाहती हो? और हमलोग काम–धाम छोड़कर बस बच्चे को ही पालते रहें क्या? आई, यू मस्ट चैंज। तुम से नहीं होता तो बता दो, हम उसे क्रॅश में छोड़ दिया करेंगे। पर हम से ज्यादा बच्चे का शौक तुम्हें ही था ना।''

इसके बाद जैसे स्मिता ने कसम ही खा ली कि आज के बाद वह बच्चे के लालन–पोषण पर कुछ भी नहीं बोलेगी।

वह एक दादी के हृदय के ममत्व से हार जाती थी। पर स्मिता का मन उससे बार–बार इस विषय को लेकर बहस करता था तब स्मिता स्वयं को यही कह कर शांत करती कि आधुनिक युग की कॉर्पोरेट महिला अब केवल रसोई और चौखट तक सीमित नहीं रही। उसने अपने सपनों की ऊचाईयों तक पहुंचना है। पर फिर मन बगावत करता था, ''परन्तु इस प्रगति की दौड़ में अपनी पारिवारिक दयित्वों से मुंह मोड़ना क्या ठीक है?'' स्मिता यह देख रही थी कि दफ्तर की मीटिंगस, प्रेजेंटेशन और डेड लाईनों के बीच घर की छोटी–छोटी जरूरतें अक्सर अनसुनी रह जाती थी। बच्चों की मुस्कान, घर की देखभाल, पारिवारिक सम्वाद सारा ही उसके समय और ऊर्जा की सीमा से बाहर हो रहे थे और स्मिता से यह बात देखी नहीं जाती थी। उसे लगता कि सफलता की सीढियां चढ़ते–चढ़ते, पीछे छूट रहा था उसका सुनहरे पलों का संचय। छूट रहा था उसका अपना आंगन और उसमें पलने वाला उसका अंश! कही ना कहीं ममता भी पीछे छूट ही रही थी। जो किसी भूखे बालक को अपना दूध पिलाने समय नहीं दे सकती उसकी जिन्दगी में उसके कैरियर की एहमियत स्मिता की सोच से परे था। वह यह सोचकर संतोष कर लेती थी कि कॉर्पोरेट बहू की व्यस्त दिनचर्या में प्रेम और ममता तो है किन्तु उसे बांटने का समय नहीं है।

प्राचीन भारतीय समाज ने नारी को गृह–लक्ष्मी कहा था। वह केवल भोजन बनाने या घर सजाने वाली नहीं थी बल्कि भावनाओं की वह धुरी थी जिसके चारों ओर घर का हर सदस्य घूमता था। स्मिता को अपना पूरा जीवन सामने दिखता। उसका दिनभर घर में खटना, काम करना और दरवाजे पर अपनों के आने का इंतजार करना! पर उसका इस आधुनिकता की दौड़ में सारा घर परिवार ही कट गया था। वो परिवार जो उसकी कोमलता और संवेदनशीलता पर आधारित था, कहीं फिसल रहा था। उसका परिवार बेहद रूखा और बिखरा हुआ हो गया था।

यह बदलती हुई सारी स्थितियाँ स्मिता को और अधिक बैचेन करने लगी। फिर भी वह चुप रहकर रूद्र में अपना मन लगा लेती थी। उसके इर्द–गिर्द उसने अपनी दुनिया बांध ली थी। आजकल घर में चारों को

इकट्ठा बैठकर बाते करने का समय ही नहीं था। इसीलिए चारों में संवाद बहुत कम हो रहा था। आलोक की अपनी व्यस्ततायें थी और दीप और चंचल अपनी ही दुनिया में खोए रहते थे। बस घर के तीन बचे प्राणी अपनी मित्रता बनाए हुए थे। स्मिता, रूद्र और शैंकी।

अब स्मिता को शैंकी से भी बहुत लगाव हो गया था। पुत्रव्रत लगाव। वह भी इतना समझदार था कि स्मिता की भाषा के अनुसार ही अपनी गतिविधियाँ करता था। रूद्र सोता तो वह चुपचाप उसके बिस्तर के नीचे बैठता था और जैसे ही वह उठ जाता था वह दौड़कर स्मिता को यह खबर देने पहुंचता। दोनों बच्चों पर लाड़–दुलार करने दीप और चंचल तो थे पर दोनों की जरूरतें और देखभाल करना स्मिता का ही काम था।

अंजली कुछ दिनों के लिए आई थी। वो स्मिता से कहीं आउटिंग जाने पर जोर दे रही थी। पर अब दोनों बच्चों को छोड़कर घर से निकलना स्मिता को संभव नहीं था। उसने अंजली को ही दिनभर के लिए घर बुला लिया। दोनो ने ढेर सारी बातें की पर अंजली की यह बात खटक रही थी कि अब बच्चों के कारण स्मिता घर नहीं छोड़ सकती थी। कहीं पर चलने की बात हो तो स्मिता घर के कुछ ना कुछ जिम्मेदारियों को सामने लाकर खड़ा ही करती थी। स्मिता की अब रूद्र की जिम्मेदारी देखकर अंजली को हैरानी हुई। उसने स्मिता से साफ–साफ कह दिया, ''उसे देखने मेड़ लगी है ना? वो देख लेगी और नहीं तो आजकल दो–चार घंटे बच्चों को क्रॅश भेजना कोई गलत बात नहीं है। बड़ी जगह तो नौकरी करने वाली माँये तो दिनभर बच्चों को छोड़कर जाती हैं ना? देखों तो जरा खुद की तरफ। स्मिता तुम कैसी होती जा रही हो। देखो अपने बारे में भी कुछ सोचो। अब बच्चों के बच्चे भी तुम्हारी जिम्मेदारी नहीं है। उनके बच्चे है, उन्हें सम्भालने की जिम्मेदारी उन पर ड़ालो। तुम सारी जिम्मेदारियां अपने सिर पर ओढे रहोगी तो कैसे चलेगा। तुम्हे भी ब्रेक की बहुत जरूरत है।'' ''नहीं अंजली, मैं कैसे घर छोडूंगी। सम्भव नहीं है। सबको कितना काम रहता है।'' स्मिता ने ठंडी आह लेते हुए कहा।

अंजली कहां मानने वाली थी। दूसरे ही दिन अंजली ने सीधे आलोक को फोन लगाया और कह दिया, ''आलोक स्मिता और मैं तीन

दिनों के लिए पचमढी जाना चाहते है।'' आलोक ने सहज ही कहा, ''मैं कब मना करता हूँ, उसी से पूछो। उसके काम और समय वही जानती है।'' अब अंजली ने सीधे दीप को ही फोन लगाया, ''दीप मैं और स्मिता तीन दिन पचमढी जा रहे है। तुम चंचल को बताओगे कि उसे भी मैं ही फोन कर दूँ? शनिवार–रविवार ही है। हम शुक्रवार दोपहर को जाएगें और सोमवार सुबह लौटेंगे। ओके?'' दीप दो क्षण चुप ही रहा फिर बडे संकोच से बोला, ''नहीं अंजली आन्टी! नेक्सट वीक बनाओ ना। इस विकेन्ट पर हम लोग पेंच जा रहे है। रूद्र घर में अकेला कैसे रहेगा?'' अंजली ने स्पष्ट–स्पष्ट कह ही दिया, ''टेक हिम विथ यू। मैंने हमारे रिर्जवेशन कर लिए है।''

स्मिता सारा संवाद सुन रही थी। वह बचैन हो उठी। आज तक इतना रोक–ठोक जवाब उसने कभी किसी को नहीं दिया था। वह नहीं–नहीं कहती रही पर अंजली ने उसकी एक ना सुनी। रात को दीप के आने पर स्मिता ने डरते–डरते पूछा, ''अंजली का कोई फोन आया था क्या?'' झुंझलाते हुए दीप बोला, ''आई आपको कुछ तो सोचना था, प्लान फाइनल करने के पहले। हम लोग पेंच जा रहे है और वहां जंगल में रूद्र को कहां ले जाएगें?'' स्मिता चुप। सन्नाटा। आलोक भी चुप। उसने कुछ भी नहीं कहां। वो बिलकुल उतना ही चुप था जितना वर्षो पहले अपनी माँ के सामने नौकरी की बात करने पर चुप था। आज भी वह काम का बहाना लेकर वहां से चुपचाप उठकर चल दिया था।

अंजली से स्मिता की हालत देखी नहीं जा रही थी। उसने जिद पकड़ी और दोनों चली गई। सुबह की पहली किरण के साथ दोनो निकल गई थी। गाड़ी भी अंजली ही चला रही थी। आलोक के ड्रायवर को ले जाने की सलाह को अंजली ने हंसी उड़ाते हुये ठुकरा ही दिया था। रास्ते भर अंजली स्मिता को समझा रही थी, ''देखो स्मिता बच्चे का क्या करना उसके माँ–बाप सोचेंगे। उनका बच्चा है। करेगें कुछ भी। उसे ऐसा थोड़ी ना छोड़ेगे। तुम कोई चिन्ता मत करों। तुम तो चिल करों यार। अपने भीतर स्वयं के लिए कुछ निर्णय लेने का साहस रखो। आखिर निजी स्वतंत्रता कोई अपराध नही, बल्कि आत्मा का स्वभाविक अधिकार है।''

पचमढी पहुंचते–पहुंचते स्मिता जरा नॉर्मल हो रही थी। पूरी यात्रा में उसने एक शब्द नहीं बोला। दोनों होटल पहुंची। खाना खाकर अपने कमरे में आई तो अचानक स्मिता फूट–फूट कर रोने लगी। उसके रूदन में मानो बन्द ज्वालामुखी फूटा था। उसके मन के अन्दर का सारा लावा फूट कर बाहर बह रहा था। अंजली ने भी उसे नहीं रोका। रोने दिया! दिल खोलकर रोने दिया! अंजली चुपचाप सो गई और रोते–रोते कब स्मिता की नींद लगी तो सीधे सुबह आँख खुली। स्मिता ने घंडी देखी सुबह के 09:30 बज रहे थे। वह इतनी देर तक कभी नहीं सोती थी। बाजू में देखा तो अंजली नहीं थी। वह ट्रेक सूट पहनकर सुबह तडके ही घूमने निकल गई थी। लगभग 10:00 बजे अंजली लौटी। उसने एक मोटर साइकल किराए पर ली थी। स्मिता को देख बड़े उत्साह से बोली, ''चाय बुलाओ यार। फिर बढ़ियां ब्रेकफास्ट लेकर आज दिन भर घूमेंगे।'' दोनों ने चाय–नाश्ता निपटाया। दोनों बाईक पर सवार घूमने निकल पड़ी। हृदय में हल्की–सी आशंका, पर उससे कई गुना अधिक उत्साह स्मिता के मन को समेटा था। रास्ते के दृश्य, पहाड़ों की खुली बॉहें, नदी और जंगल का वह सानिध्य सब कुछ मानो स्मिता को यह सिखा रहा था कि जीवन का विस्तार घर की चार दीवारी से कहीं अधिक है।

कितने वर्षों बाद आज स्मिता इतनी खुश थी। अन्दर से खुश। अन्तर मन से खुश। स्मिता ने दिनभर वह सारी चीजें की, जो वो अपने कॉलेज जमाने में किया करती थी। अंजली ने और उसने फुलकी खाई, शॉपिंग की, बियर पी और फर्राटे मार–मार कर घूमती रही। वी–फॉल जाकर खूब नहाया और मढई के जंगल की सैर भी कर ड़ाली। आलोक का फोन आया तो अंजली ने कहा, ''मत उठाओ। लेट हिम वेट!'' और दोनों जोर से हंस पड़ी।

रात को कमरे में स्मिता ने अंजली के सामने अपने दिल के सारे भेद खोल दिये। उसका अकेलापन, परिवार में सबकी अपनी व्यस्तताऐं, उसका निजी जीवन ना होना, परिवार में आपसी संवादों की कमी। सारा कुछ उसने बोल दिया। अंजली ने उसे बस इतना ही कहा, ''देखो आ गई हो ना? अब एंजॉय करों। कर लेंगे सब अपना–अपना मेनेज। तुमने ही सब को इतना लाड़ कर, डिपेंडेंट बना दिया है कि तुम भी अपना कुछ नहीं कर सकती। अब बहुत हो गया तुम कुछ अपना करने लगो

और उन्हें अपनी जिम्मेदारी का एहसास हो और तुम्हें अपने जीवन से प्यार होना चाहिए।''

अंजली के सामने अपने–आपको बदलने का दृढ़ संकल्प लेकर स्मिता नए विश्वास के साथ लौटी। सारी बाते कह देने से उसे बहुत हल्का लग रहा था। उसने वह खोया आत्मविश्वास पाया जो कभी उसकी आँखों में चमक बनकर झलकता था पर अब संदेहों की धुन्ध में कहीं छिप गया था। एक कुम्हार की तरह स्मिता ने टूटी हुई मिट्टी को फिर से गूथकर नया रूप देने का मन बना लिया। वह अपने टूटे हुए मन के टुकड़े विश्वास की नमी से फिर जोड़ना चाहती थी। अंजली ने उसे कहा था, ''हर पतझड़ के बाद वसंत आता है डियर। आत्मविश्वास कोई पराई वस्तु नहीं, वह हमारे भीतर ही छुपा हुआ एक दीपक है। बस थोड़ा बुझा–बुझा सा है।'' स्मिता समझ गई कि इस दीपक को पुनः जलाने एक छोटी–सी लौ की जरूरत थी और वह थी अंजली।

घर वापस आने पर कुछ समय के लिए स्मिता झेंप गई थी। उसका जाना यूं तो किसी को पसंद नहीं आया था। आलोक ने रूखे से स्वर में पूछा, ''आ गई?'' चंचल ने तो इस विषय पर कुछ पूंछना जरूरी भी नहीं समझा। दीप घर में नहीं था। वह एक मीटिंग के लिए सुबह–सुबह ही दिल्ली निकल गया था। धीरे–धीरे स्मिता को उसकी अनुपस्थिति के उन तीन दिनों की अनेक कथाओं का पता चला। दीप की सुबह 05:00 बजे की फ्लाईट मिस हो गई थी। आलोक तीनों ही दिन बिना ब्रेकफास्ट किए हुए ही ऑफिस चला गया था। रूद्र की मेड का अचानक स्वास्थ्य खराब हो गया था। दो दिन वो लपाता थी। इस के कारण चंचल को छुट्टी लेनी पड़ी थी। घर का गैस सिलेन्डर खत्म होने के कारण खाना तो रोज होटल से ही आ रहा था। सब के चेहरे पर स्मिता के लौटने का अजीब सा सकून स्मिता साफ–साफ पढ रही थी। सभी छुपा जरूर रहे थे पर सभी प्रसन्न जरूर थे। वही प्रसन्नता जो घर की कामवाली समय पर आने पर हर स्त्री के चेहरे पर साफ झलकती है।

स्वाभाविक रूप से स्मिता ने लौटने के बाद सारी बागडोर अपने हाथों में सम्भाल ली थी। फोन कर तत्काल ही गैस सिलेन्डर बुलवा लिए थे। रोज का सारा काम व्यवस्थित शुरू हो गया था। ऊपर से तो वह एकदम शांत दिख रही थी परन्तु भीतर एक अजीब सा तूफान उमड़ा

था। जिसका वेग वह खुद भी समेट नहीं पा रही थी। इतना था कि उसका मन उसे कुछ कहने की कोशिश कर रहा था। बार–बार उसका मन अंजली को धन्यवाद देना चाह रहा था। बहुत दिनों बाद स्मिता थोड़ी तनाव मुक्त सी लग रही थी। मन ही मन में नए उत्साह से भरी हुई थी कि अचानक उस दिन–

19

रोज के सारे काम निपटने के बाद, महिने का किराना लाने स्मिता ड्रायवर के साथ निकल गई। बाजार जा कर उसने सारा सामान खरीदा। लौटते में देखा, उसके घर के थोड़े ही आगे बहुत भीड़ लगी हुई थी। हॉर्न बजाते–बजाते ड्रायवर ने गाड़ी भीड़ से निकालनी चाही, तो अचानक उसकी नजर सामने पड़ी। सामने बीच सड़क में शैंकी पड़ा था। किसी गाड़ी ने उसे उडाया था। ड्रायवर घबराकर बोला, "मेडम! शैंकी!!" स्मिता की नज़र भी पड़ी। हड़बडाहट में दरवाजा खोलते हुए वो शैंकी की तरफ दौड़ी। वो काफी चोटग्रस्त हो गया था पर उसने स्मिता को देखा और पूछ हिलाने की कोशिश की। स्मिता ने उसे गोद में उठाया और डाक्टर की तरफ गाड़ी ले गई। पर थोड़ी ही दूर जाकर शैंकी ने अपनी आखिरी सांस ली। स्मिता उसे गोद में लेकर फबक–फबक कर रोने लगी। उसने सारा माजरा समझा।

हुआ यूं था की स्मिता गाड़ी में बैठकर निकल गई तब उसने नहीं देखा कि शैंकी भी पीछे–पीछे आ रहा था। वो गाड़ी के पीछे कुछ समय दौड़ा भी पर स्मिता काफी आगे निकल गई थी और अचानक किसी गाड़ी ने पीछे से उसको उड़ाया था।

वो उस दोपहर का दृश्य जैसे समय को चीर कर ह्रदय में अटक गया। सड़क के बीचो बीच– जो अभी तक आंगन में उछलकूद कर रहा था– अब अपनी अखिरी सांसे गिन रहा था। उसकी मायूस आँखे आधी खुली थी, मानो वो किसी अपने का इंतजार कर रही हो। किसी तेज गति कार के पहियों की निर्मम रफ्तार ने उसके जीवन की चंचल लौ को एक पल में थाम दिया था। हवा में हल्की–सी मिट्टी और खून की गंध तैर रही थी, और स्मिता के मन में एक गहरा, खाली–सा शून्य फैल गया– उसके घर का एक हिस्सा, एक प्यारी संगत, हमेशा के लिए खो गई थी।

घर पहुंचते ही स्मिता ने आलोक और चंचल को फोन लगाया। आलोक तो हमेशा की तरह व्यस्त था, पर सारे काम छोड़कर तुरंत चंचल घर आ गई थी। वह भी जोर–जोर से रोने लगी। उसके पास बैठकर स्मिता और चंचल, आलोक और दीप का इंतजार कर रही थी। चंचल ने सारा वाक्या पूछा पर स्मिता के मुंख से कुछ भी शब्द निकल नहीं पा रहे थे। वह खुद को इस घटना का जिम्मेदार मान बैठी थी। उसे अपराध बोध सता रहा था। वह किसी अदृश्य बोझ से भारी हो गई थी। मन बार–बार उस पल लौट रहा था, जब थोड़ी–सी सावधानी बरती होती, तो आज शैंकी जिन्दा होता। उसकी मासूम आँखों की आखिरी सवालिया नज़र, जैसे उसके भीतर चुभ रही थी। उसक नज़र मानो कह रही थी, ''तुम्हारी लापरवाही ने मुझे छीना है।'' अपराध बोध का यह भार स्मिता के दिल में गहराता गया।

आजकल शैंकी स्मिता का सच्चा साथी बन गया था। दिन भर उसी के पीछे–पीछे घूमता रहता था। सोने भी वह स्मिता के कमरे में ही आता था। जब वह रसोई में काम करती और रूद्र सोता रहता तब वो कमरे में बैठकर रूद्र की देखभाल भी करता था। स्मिता के लिए यह एक बड़ा गहरा सदमा था। चंचल और दीप क्या सोचेंगे इस विचार से स्मिता सिर ऊपर करने की भी स्थिति में नहीं थी बस रोई जा रही थी।

शाम होते–होते आलोक और दीप भी आ गए। बगीचे में ही गड्ढा बनाया गया था। वहीं शैंकी का पार्थिव शरीर दफनाया गया । स्मिता ने उसके ऊपर मधुकामिनी का एक पौधा लगाया। वह मधुकामिनी जिसकी महक बचपन से आज तक उसके रोम–रोम में वसी हुई थी। जैसी शैंकी की यादें।

घर में अजीब सी खामोशी थी। रात में सभी ने भूख नहीं होने का बहाना बताया और स्मिता चुपचाप अपने पलंग पर लेट गई। जो कोना उसकी पूंछ की थाप और आँखों की मसूमियत से चमकता था वहां अब उदासी की परतें जम गई थी। उसकी वह थाली, उसका छोटा सा पलंग, गद्दा, तकिया सब कुछ सूना था। यह सब कुछ अब केवल स्मृतियाँ बन गया था।

शैंकी सिर्फ एक जानवर नहीं था। वह उनके परिवार का एक महत्वपूर्ण सदस्य था। वह स्मिता के जीवन का एक निश्चल, निस्वार्थ

हिस्सा भी था। उसकी आँखों में जो प्रेम था, वह किसी शब्द या भाषा का मोहताज नहीं था। आज जब वह चला गया तो स्मिता को लग रहा था कि घर का एक कोना खाली हो गया। रात भर स्मिता सो ना सकी। बार–बार उसकी नज़र उस दरवाजे पर जा रही थी जहाँ अक्सर वह रातों को सोता था। स्मिता को इससे उभरने बहुत दिन लगने वाले थे। उसके जाने का सबसे बड़ा असर यह हुआ कि चंचल ने भी स्मिता को ही इसका जिम्मेदार मान लिया। उसने स्मिता से बात करना ही छोड़ दिया। अब स्मिता और चंचल के बीच एक अजीब सी दरार पड़ने लगी थी। उन दोनों के संबंधो में एक अदृश्य तूफान उतर आया था। चंचल की नज़रों में स्मिता को एक उलाहना सी दिखती थी। आजकल उसके शब्द कम और नज़रे अधिक बोल रही थी। चंचल की हर निगाह मानो यही कह रही थी कि गलती तुम्हारी ही थी। उस दिन से खाने की मेज पर उसकी नज़रें सीधी नहीं उठती थी। शैंकी की कमी के साथ–साथ घर में एक अनकहा फासला भी जन्म ले चुका था।

आजकल चंचल स्मिता से कुछ ज्यादा बात नहीं करती थी। बस सुबह काम पर निकलते, ''आई मी जाते'' के अलावा दोनों में संवाद शून्यता हो गई थी। दिन बीत गए सबकुछ सामान्य सा हो रहा था पर स्मिता का अपराध बोध और गहरा हो रहा था। दुखद तो यह था कि किसी ने भी उसे, ''उसकी गलती नहीं है'' ऐसे समझाने की कोशिश भी नहीं की थी।

रथ पर सवार समय तेज रफ्तार से निकल रहा था। स्मिता के जीवन में आज भी वही सबकुछ था। सुबह की चाय, टिफिन, नाश्ता, घर! घर की घड़ी की टिक–टिक तो चल रही थी पर स्मिता के जीवन की घड़ी की सुईयाँ वहीं की वहीं रूकी थी। उसका समय कतई उड़ नहीं रहा था। वह चुपचाप रिस रहा था, उसके अंतरमन में।

20

हर दिन वही दोहराव– सुबह से रात तक घर की जिम्मेदारियों में उलझी स्मिता, कब खुद से दूर हो गई, उसे खुद पता ही नहीं चला। सुबह से उठकर वह घिसी पिटी दिनचर्या! पहले रणदीप को बस तक छोड़ना और अब रूद्र को! स्मिता की पहचान इन्हीं जिम्मेदारियों में सिमटकर रह गई थी। रिश्तों की उम्मीदें, कर्तव्यों का बोझ और समाज की संजीवनी और आलोक का स्टेटस सबकुछ उसी पर टिका था। स्मिता अब अपने आपको एक थकी हुई मशीन समझने लगी थी। वह थक गई थी इस अनकहे समर्पण से, और कभी खत्म ना होने वाली सेवा से। घर में किसी को इस बात की फिक्र ही नहीं थी कि वह कैसी है कोई यह समझने की कोशिश ही नहीं करता कि, ''वो क्या चाहती है?'' किसी के पास इतना समय भी नहीं था कि कोई स्मिता को उसके शौंक के बारे में कहे या पूंछे या समय दे। वह अब थक चुकी थी। वह अब सांस लेना चाहती थी, खुली हवां में। किसी जिम्मेदारी के बगैर! वह जीना चाहती थी, बस अपने लिए।

कभी उसे लगता कि घर सम्भालना मेरा फर्ज है पर अब लगने लगा था कि इस फर्ज में वह खुद ही कहीं गुम हो गई हो। वह हर सुबह सूरज के साथ ही उठती थी पर खुद के लिए नहीं अब उसके हाथों में थकान होती थी और मन में खालीपन। कोई यह नहीं देखना चाहता था कि वह भी कभी कुछ बनना चाहती थी– बस एक मैं।

स्मिता को अब ऐसे लगने लगा कि वह बस एक व्यवस्था है– घर चलाने की, सबका ध्यान रखने की। आजकल उसका मन करता था कि चुपचाप निकल जाऊँ– किसी पहाड़ पर– अकेली, एक दम अकेली। जहां सिर्फ वह रहे उसकी खामोशी हो और थोड़ी सी आजादी। मन मानी करने की आजादी।

शादी के 25 साल हो गए। पहले सास–ससुर की देखभाल, फिर बच्चे की परवरिश और फिर पति की पसंद–ना पसंद का ख्याल रखते–रखते, स्मिता यह भूल गई कि उसकी क्या पसंद है? कोई यह नहीं पूछ रहा था कि वह क्या सोचती है, क्या महसूस करती है? क्या उसे कुछ कहना भी है?

अब दीप भी अपने जीवन में व्यस्त हो गया था। उसके पास भी अब आई के लिए बहुत कम समय रहता था और आलोक की अपनी महत्वकांक्षा तृष्णा भी अभी अतृप्त थी। स्मिता को घर बड़ा खामोश लगाता था। वह थक चुकी थी साबित करते–करते और मन्द–मन्द मुस्कुराते–अपने स्मित हास्य को बिखेरते। यह दिखाते हुए कि हां मैं खुश हूँ। अपने मुख पर सफलता और खुशी का यह आवरण उसे भारी लगने लगा था। वह अब खुद के लिए जीना चाहती थी। थोड़ी सी जगह, थोड़ी सी चुप्पी, थोड़ी सी आजादी जहां वह यह कह सकती थी, ''मैं विजयंता हूँ।'' इतना महसूस करने की आजादी वह तलाश रही थी।

21

आज भी कुछ ऐसा ही हुआ। सुबह–सुबह का समय था। आलोक ने अपना मोबाईल चैक करते हुए कहा, ''चाय में चीनी जरा कम डालना आजकल देख रहा हूँ अक्सर चीनी जरा ज्यादा ही डालती हो'' स्मिता ने हल्के से मुस्कुराकर सिर हिला दिया। ये वही मुस्कान थी जो पिछले 25 साल से वो पहनकर घूम रही थी–बिना सवाल–बिना जबाव। आज जाते–जाते चंचल ने भी कह ही दिया, ''आई टिफिन में रोज वही सब्जी रोटी मत रखना, जरा कुछ स्प्रॉउट और सेलेड्स बना दीजिए, आजकल मैं डायटिंग पर हूँ।'' निकलते–निकलते दीप ने जूते पहनते हुए कहां, ''आई जरा वाई–फाई को चैक करना उसका रिचार्ज भी देखना दो दिन से नेटवर्क नहीं रहा, मुझे रात को मेरी ऑनलाईन जरूरी मीटिंग है। शाम तक उसे ठीक करवा लो। स्मिता ने सबके आदेश सुने– बिना सवाल–बिना जवाब। यह रोज की नई पर एक सी छोटी–छोटी बातें स्मिता की आत्मा पर बड़ी–बड़ी दरारें ड़ालती जा रही थी।

22

दिन बीत रहे थे सबकुछ रोजमर्रा की तरह चल रहा था। आलोक 15 दिन भारत में तो 15 दिन विदेशों में ही रहता था। दीप का भी प्रमोशन हो गया था। चंचल भी अब एक्जीक्यूटिव पोस्ट पर पहूँच गई थी। रूद्र भी बड़ा हो रहा था और अब कक्षा दूसरी में पहुँच गया था। रूद्र का स्मिता के आस–पास मंड़राते रहना स्मिता को बहुत अच्छा लगता था। अब उसकी दुनिया भी रूद्र की जिन्दगी के ही आस–पास भटकती थी। दिनभर उसका स्कूल, लौटने का समय, समय मिलाकर स्टॉप तक पहुँचना, फिर उसका खाना, खेलने के लिए ग्राउंड भेजना, शाम को उसकी पढ़ाई– सारा जिम्मा स्मिता का ही था और स्मिता पूरे ममत्व के साथ बड़े शौक से उसे निभा भी रही थी। उसकी घड़ी अब केवल रूद्र के समयानुसार ही घूमती थी।

कामकाजी माँ–बाप के साथ यही समस्या है। स्मिता को ये बातें अक्सर चिंता में डाल देती थी। उसे इस बात का दुःख होता कि इस छोटी सी जान को अपने माँ–बाप के सुख कितने कम मिलेगें। उन दोनों का आजकल लौटने का कोई समय नहीं था। सुबह जल्दी–जल्दी नाश्ता, भागते कदम, यही जिन्दगी हो गई थी। शाम लौटते–लौटते उनके थके चेहरे, बच्चे की कहानियाँ और स्कूल के किस्से या उनकी छोटी–छोटी शिकायतें सुनने के लिए राजी नहीं थे। लेकिन इसी की कमी पूरी करते–करते स्मिता अपनी जिम्मेदारी निभा रही थी। पर एक बात उसे हमेशा खल रही थी। शैंकी के हादसे की बात, चंचल का और उसका रिश्ता। आजकल दोनों में संवाद की काफी कमी आ गई थी और स्मिता का अपराध बोध भी कम नहीं हो रहा था। फिर भी चलती का नाम ही जिन्दगी है। स्मिता चुपचाप सभी कुछ साधारण होने का स्वांग रचकर घर में पूर्ववत व्यवहार करने की पूरी कोशिश में लगी रहती थी। दिनभर बस वो और रूद्र।

एक दिन स्मिता सकपकाकर रह गई, जब रूद्र ने उसे बताया कि मम्मा–बाबा उसे हॉस्टल में ड़ालने वाले है। वह रो–रो कर कह रहा था, ''नहीं आज्जी, मुझे हॉस्टल नहीं जाना। मैं आपके साथ ही रहना चाहता हूँ।'' स्मिता को इस बात का ज्यादा दुःख हुआ कि दीप और चंचल ने उनके इस निर्णय में उससे बात करनी जरूरी भी नहीं समझीं थी। हालाकि स्मिता भी केवल रूद्र की बातों से ही अंदाजा लगा रही थी। उसका मन यही कहता था कि शायद रूद्र को अनुशासन में ढालने के कारण ऐसी बाते करते है। पर एक दिन यह सब सत्य हो गया और स्मिता को यह पता चल गया कि रूद्र हॉस्टल जाने वाला है।

स्मिता एकदम घबरा गई थी। यह सब यादें अब केवल दिल में बसकर ही रह जाऐंगी। बेटे–बहू ने तो साफ–साफ जबाव दे ही दिया था, ''अब समय बदल गया है। वक्त आ गया है कि वह आत्मनिर्भर बने।'' दादा–दादी के मन का भाव कौन समझेगा? उसके जाने के बाद से आलोक भी बहुत दुःखी था परन्तु हमेशा की तरह कुछ भी बगैर बोले ही उसने अपना पक्ष साफ रखा। कहीं भी जाने पर रूद्र के लिए कुछ ना कुछ लाना आलोक कभी नहीं भूलता था। चाहे वो रात को कितनी ही देरी से लौटे आलोक बगैर रूद्र को देखे, उसके सिर पर हाथ फेरे, कभी भी टेबल पर खाना खाने नहीं आता था। पर उनके दिल की बात को समझने बेटा–बहू तैयार नहीं थे। स्मिता को तो ऐसा लग रहा था जैसा उसके जीवन की असली मुस्कान ही खो गई हो। जब से यह बात पक्की हो गई थी, स्मिता रात–रात जागती थी। करवटें बदलती थी पर अपनी बात कहने का कोई अर्थ नहीं यह वो जान गई थी। बेटे–बहू ने स्मिता को पूछा नहीं था उनका निर्णय ही सुनाया था और अब स्मिता के पास सिवाए हलात का सामना करना ही रह गया था।

घर में अजीब सा सन्नाटा छाया था। चंचल अपनी सुविधा अनुसार रूद्र के जाने की तैयारियों में लगी थी। उसका एडमीशन हो गया था। अगले महिने रूद्र का स्कूल शुरू होने वाला था। उसके जाने के बाद का ख्याल आलोक ने तो अपनी व्यस्तता के बीच पचा लिया था पर स्मिता का क्या? वह रह–रहकर दुःखी हो रही थी। उसकी तैयारियों के बारे में भी चंचल ने उससे कोई बात नहीं की। दीप और चंचल आपस

में ही अपने ऑफिस टाइम के बाद तैयारियां किया करते थे और स्मिता हमेशा की तरह घर के काम और आखिर वह दिन आ ही गया।

23

रूद्र आज जाने वाला था। उसे छोडने चंचल भी जा रही थी। दीप दिल्ली की मीटिंग खत्म करके सीधे पंचगनी पहुँचने वाला था। पंचगनी के एक नामी स्कूल में रूद्र का दाखिला हो गया था। रूद्र निकलने लगा, उसे ज्यादा कुछ समझ में नहीं आ रहा था पर जाते हुए वह स्मिता की गोद से उतरने तैयार नहीं था। आखिर स्मिता ने ही उसे गाड़ी में बिठाया। गाड़ी में बैठकर उसने मुड़कर देखा वह अपना नन्हा सा हाथ हिलाते हुए अपनी अज्जी को देख रहा था। स्मिता की आँखों के कोनो से आंसू चुपचाप लुढ़क गए। स्मिता नहीं चाहती थी कि रूद्र उसे रोता हुआ देखे। उसने भी मुस्कुराते हुए हाथ हिलाया और गाड़ी आगे बढी। वह नज़रों से ओझल हो इसके पहले ही स्मिता पलटकर घर में आ गई। उसने मुस्कुराकर हाथ जरूर हिलाया था पर उसके भीतर कोई चीख रहा था– ''क्या जरूरी था, इतनी जल्दी उसे दुनिया की भीड में ढकेल देना?'' स्मिता के भीतर की दादी की कोमलता अब सतह पर आ गई। वह दौड़कर अन्दर आई और सीधे बाथरूम में घुस गई। बाथरूम का नल छोड़ और पानी की धारा में अपने आसुओं की धाराओं को बहने दिया। उसके सिसकियों की आवाज भी पानी की ध्वानि में घुल गई। स्मिता जी भर कर रो दी। जब उसे हल्का लगा तो उसने दोबारा ना रोने की कसम खाई और पुनः चहरे पर स्मित मुस्कान बिखेरकर बाहर आ गई। जैसे कुछ हुआ ही ना था।

दूसरे दिन की वह शांति स्मिता से सही नहीं जा रही थी। उसका मन किसी सूने मंदिर की घंटी बन गया था– बजने को तो वह बजती है पर अन्दर को श्रद्धा का भाव नहीं था। उसकी भावनाऐं बिखरकर चारों ओर ऐसे फैल गई थी जैसे किसी शीशे का टूटकर बिखर जाना। स्मिता के अन्दर कुछ पिघल रहा था– रिश्तों की ठंडक और उम्मीदों की राख। सब एक साथ मिलकर एक अजीब सा भयानक सा सन्नाटा स्मिता के

जीवन को बर्बाद करने तुला था। स्मिता के लिए जिन्दगी बस बिखरे हुए सपनो का एक ढ़ेर था। उसकी आत्मा चीख रही थी पर बाहर सबकुछ शांत था, स्वाभाविक था, साधारण था, संतुलित था। बाहर सबकुछ इतना शांत था कि भीतर के टूटने के आवाज स्मिता को साफ सुनाई दे रही थी।

24

आलोक कॅनडा जाने की तैयारी में लगा था। वहां उसकी कम्पनी ने अपनी एक शाखा खोली थी। आलोक उस शाखा का प्रेसिडेंट बनकर वहां जा रहा था। उसने स्मिता को साफ–साफ कह दिया था, ''अभी तो मुझे तीन–चार महिने के लिए जाना पड़ेगा। एक बार सारा काम व्यवस्थित हो जाए तो छः महिने में तुम्हे भी लेकर जाऊंगा पर अभी सम्भव नहीं है।'' ''पर आलोक..... मैं'' ''तो क्या यहां दीप और चंचल है ना?'' स्मिता ने साहस कर बोल ही दिया, ''आलोक, वो दोनों तो अपने काम में व्यस्त रहते है मैं दिनभर अकेली रहती हूँ। अब तो रूद्र भी नहीं है। कभी मेरे बारे में भी सोचो। मैं भी चलूं तो? जहां तुम रहोगे मैं भी रह लूंगी। तुम से मैं अलग से कुछ भी नहीं मांगूगी। पर इतने लम्बे समय के लिए मुझे अकेला मत छोड़ो।'' ''कैसी बात कर रही हो। क्या मैं वहां मजे मारने जा रहा हूँ। अभी तो वहां जाकर मुझे खुद को सेटल करना है फिर ऑफिस सेटल करना है और इन सब कामों में तुम्हारा बोझ? नहीं अभी सम्भव नहीं है और यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि कब सम्भव होगा अभी नहीं कहा जा सकता। मुझे पहले जाने दो फिर सब व्यवस्थित हो गया तो आगे देखेंगे।'' आलोक ने कुछ झुंझलाते हुए कहा था। दो दिनों में ही आलोक चला गया।

रूद्र को हॉस्टल छोडने के बाद चंचल भी दो महिनों के लिए अपने माता–पिता से मिलने जाने वाली थी और दीप का प्रमोशन ट्रेनिंग दिल्ली आ गया था। वह तीन हफ्तों के लिए दिल्ली जा रहा था। घर में रह जाती है स्मिता अकेली और उसके साथ उसकी तनहाई और चीखती हुई गूंजें।

स्मिता अब अकेलेपन से यूं डरने लगी थी जैसे कोई बच्चा अंधेरे से डरता हो। दिन तो जैसे–तैसे नौकरों के बीच निकल ही जाता था पर शाम होते होते अंधेरा उसके कमरे की दीवारों पर भी उतरने लगता

था। उसका मन काप उठता था। घर का हर कोना जैसे उसकी चुप्पी और अकेलेपन की हंसी उड़ाता था। यह अकेलापन उसके लिए सिर्फ एक स्थिति नहीं थी, एक साया था जो हमेशा उसके साथ–साथ चलता था।

स्मिता ने अब पचास की उम्र पार कर ली थी। उसके चेहरे की झुर्रियों से ज्यादा उसकी सुनसान, खामोश आँखे बोलती थी। उसे अकेलापन काट खाने को दोड़ता था। टी.व्ही. भी चलाती तो उसे उसकी आवाजें शोर लगती, किताब खोलती तो उसके शब्द मौन हो जाते थे। फोन पर सहेलियों से बेतुकी बातें कर, गॉसिप का आंनन्द लेना उसे कभी अच्छा नहीं लगा था। सजी–धजी बनकर रोज किटी पार्टियों में जाने का उसे जरा भी शौक नहीं था। उसे हमेशा कुछ करने की इच्छा थी। कुछ क्रियात्मक। कुछ सकारात्मक! कुछ अपना! कुछ नया! बचपन ने वह अच्छी कवितायें भी किया करती थी। अच्छे भाषण देती थी और सभी से मेल जोल बनाकर चलती थी, पर परिस्थितियों ने विवाह के बाद ऐसी करवट बदली कि अब स्मिता के अन्दर की विजयंता कहीं आस–पास नज़र भी नहीं आती थी। विवाह बाद की परिस्थितियों ने कभी उसको समझने की कोशिश ही नहीं की थी।

पति अपनी महत्वकांक्षा की दुनिया में, बच्चे अपनी जिन्दगी में मगन थे और स्मिता? वो गृह–लक्ष्मी, एक ऐसी लक्ष्मी बन गई थी जो केवल घर की शोभा, घर की इज्जत, घर चलाने की व्यवस्था बन गई थी। अक्सर हम नारी को पूज्यनीय बनाते है पर उसे सम्माननीय बनाना भूल जाते है। स्मिता भी घर की ऐसी एक पूज्यनीय देवी थी जो आत्मसम्मान और भावनाओं की समझ के लिए तरस रही थी।

एक दिन उसने आईने में खुद को देखा। वह चौंक गई। उसे वह चेहरा अजनबी सा लगा। क्या यह मैं हूँ? वह सोचने लगी। वो विजयंता, वो विजू कहीं खो गई थी जो कभी खुलकर हंसती थी, गुनगुनाती थी, अपने आई–बाबा की लाड़ली थी, अपने दादा की प्यारी विजू थी, मोहल्ले की नटखट विजू थी और विवाह के बाद पति की लाड़ली रानी थी। आज वो कहीं भी नज़र नहीं आ रही थी।

25

सुबह होने पर स्मिता उठी तो सूरज की रोशनी कमरे में बिखर रही थी। आज उसे चाय बनाने के लिए जल्दी उठने की जरूरत नहीं थी। उसने खिड़की से पर्दा हटाया, बाहर हरे–हरे पेड़ों पर रंग–बिरंगी चिड़ियां चह–चहा रही थी। वो चिड़िया उसकी खिड़की में आती, कुछ आवाज करती और फिर उड़कर पेड़ पर चली जाती थी। स्मिता बिस्तर पर पड़े–पड़े उनका यह खेल देख रही थी। उसे लगा कि वो चिड़िया उससे कुछ कह रही है, ''तुम भी आ जाओं ना! हम मिलकर उड़ान भरते है। गीत गुनगुनाते है। देखो बाहर कितना सुन्दर आसमान हमें उड़ान भरने बुला रहा है।'' फिर वो चिड़िया उसे कहती, ''चुप क्यों हो? आओ! तुम भी पंख पसारो। उड़ान भरो। खुली हवा में हवा की तरह बहो।''

स्मिता ने खुद से सवाल पूछा, ''आखिर मैं कौन हूँ?'' उसके जीवन में सबकुछ था। घर, सम्पन्नता, बच्चे, बहू, नाती, सबकुछ लेकिन इन सब में वो खुद कहां थी? यादों के झरोखे खुलने लगे। स्कूल–कॉलेज की वह हंसती, खिलखिलाती विजू! फिर शादी हुई वो पत्नी बनी, फिर आई, इस सफर में वो विजयंता से स्मिता कब बनी उसकी समझ में नहीं आया लेकिन वह स्मिता बनी! सबके सामने मौन रखकर मुस्कुराने वाली स्मिता। कई वर्षों से उसने अपने आप को सवाल तक नहीं पूछा था। कभी प्रतिशोध नहीं किया। कर्तव्य समझ कर सभी के निर्देशों को सुनती रही और आज जब उम्र 50 के पर थी तब उसमे अपने आप से सवाल पूछने का साहस लौटा था। स्मिता सोचने लगी, अगर मैं अब भी नहीं बदली तो कब बदलूंगी? उसने एक लम्बी गहरी सांस ली। हथेलियों को रगड़ कर गरम किया, उन्हें अपनी आँखों पर रखा। फिर धीरे से आँखे खोली और स्मिता से पुनः विजयंता बनने का निर्णय लिया। एक साहसी निर्णय।

उसने चुपचाप घर समेटा। ताले लगाये और दृढ मन से ड्रायवर को आवाज लगाई, ''मनोहर गाड़ी निकालो। हमें किशनपुर चलना है और वह निकल पड़ी।

26

गाड़ी में बैठकर स्मिता यही सोचती रही, ''जीवन में बदलाव लाना हमारे हाथ में है। आजतक मैं कर्तव्यों को सर्वोपरि रखकर अपने आप को भूल गई थी पर अपने लिए जीना कोई गुनाह नहीं है। किसी नए शौंक की शुरूआत करना, कुछ नया सीखना, प्रकृति के साथ समय बिताना यात्राऐं करना या फिर अपने विचारों को खुलकर व्यक्त करना जिन्दगी जीने के लिए जरूरी है। ठहराव अगर समय पर तोड़ा जाए तो जीवन फिर से एक नई दिशा में दौड़ सकता है। इसलिए जरूरी है, हम अपने भीतर झांके। जीवन में रचना, बदलाव और नवीनता को अपनाना कोई गलती नहीं है। देर से ही सही मगर यह साहस मैं करूंगी। स्वयं के लिए करूंगी।'' विचारों के इस बवंडर में हिचकोले खाते–खाते वो किशनपुर पहुंची। रास्ते में उसने नन्दू को फोन कर घर का ताला तोडकर सफाई करवाने को कहा था और अगले दो घंटों में वह किशनपुर, अपने घर पहुंच गई।

स्मिता को चाची की वह बात याद आई, ''कभी भी आ जाया करो। हमलोग है ना! अब रूकने के लिए ही आना। ढेरसारी बातें करेंगे।'' इसबार कुछदिन वही रूकने के मन से ही स्मिता वहां आई थी। वह अपनी पुरानी स्मृतियों को ताजा करना चाहती थी। उसे अपने बचपन के घर में आकर पुरानी यादों में खोना था। पुरानी यादें किसी पुराने एल्बम में चिपकाई हुई तस्वीरों की तरह होती है। उसने पूरा घर साफ किया। एक–एक कमरा एक कहानी सुना रहा था। जब वह बीते लम्हों को याद करती, तो दिल के किसी कोने में एक कसक सी उठती, पर उसी के साथ एक मीठी मुस्कान भी चेहरे पर खिल उठती। वो बचपन की गलियां, आई के कहे अनुसार उसका रसोई में काम करना, दोस्तों–सहेलियों को साथ बेपरवाह हंसी, झगड़े– सबकुछ जैसे फिर से जीवित हो उठा था।

समय भले ही आगे बढ गया था पर यादों की धरोहर स्मिता को विजू से जोड़ रही थी। वह विजयंता–विजू में खो गई थी।

रोज सुबह पुराने लोगों से मिलती रहती। बुढे हुए चाचा–चाची, बुआ–मौसी सबसे मिलने का एक अलग ही आनन्द था। उसके साथ पढने वाली सारी सहेलियों के घर जा–जा कर उसने उनके नए पते ढूढ ही लिए। यथा सम्भव सबसे सम्पर्क बनाया। सबसे ढेर सारी बातें की। उसके साथ पढने वाले बहुत से लड़के अब वहां किसी ना किसी व्यवसाय में व्यस्त थे। उसने उन सब को भी अपने घर बुलाया। चाय–नाश्ते की पार्टियां हुई। दिन मानो हवा में उड़ने वाले पन्नों की तरह उड़ रहे थे।

आज बरामदे में उसी पुरानी कुर्सी पर बैठी, स्मिता हाथ में आधा भरा कप लिए सूरज की उतरती किरणो को देख रही थी। हाथ की चाय ठंडी हो चुकी थी, मगर उसके मन में कुछ बहुत पुरान उबल रहा था। वो दादा के साथ लड़ना, आई से भेल मुड़ी के लिए पैसे मागना, बाबा के पास नए कपड़ों की जिद करना– सबकुछ। ''समय कब निकल गया, पता ही नहीं चला.......'' उसके मन ने दोहराया।

एक समय था जब सुबह जल्दी उठकर वो घर के सारे काम शुरू करती थी। दादा की चाय फिर अपनी, फिर आई–बाबा की। फिर दौड़कर स्कूल जाना, जाते–जाते मौहल्ले की सारी चाची–बुआ–मौसियों से हाल–चाल पूछना, वो सहेलियों के साथ खिलखिलाना, वो मौहल्ले में लड़कों से झगड़ना, गुस्सा आकर उनकी बॉल कुऐं में फेकना– आज उस खाली आंगन में वह सबकुछ याद कर रही थी।

फिर शादी! वहां फिर ससुराल की चहल–पहल। दीप का दूध, आई जी की चाय, आलोक का नाश्ता। उसके मोजे ढूढ़ना। दीप की बैग जमाना। उसे बस तक पहुंचाना। वो दिन भर रसोई और कमरों के बीच दौड़ती रहती थी बिना रूके–बिना थके। और आज वह अकेली बैठे–बैठे बीते समय की सियाही में डूब गई थी। वह कुर्सी से उठी तो उसका मन किसी भारी ताले सा था जिसकी चाबी कई वर्षों से गुम हो गई थी।

स्मिता अन्दर आई और अपने पुराने कमरे में पहुंची। उसने वह अलमारी खोली उसपर आज भी उसी के हाथों से सजाकर लिखा हुआ नाम उसने पढा 'विजयंता'। उसमें विजयंता की कुछ कॉपियां मिली, कुछ

फोटो भी रखे थे। विजू के स्कूल में नाच करते फोटो, कुछ इनाम लेते फोटो, कुछ सहेलियों के साथ के फोटो। कुछ दिवाली, कुछ होली के रंग में नहाये फोटो। कांपती उंगलियों से स्मिता उन फोटो को सहलाने लगी। अचानक उसे लगा के भीतर से कुछ हल्का सा महसूस हो रहा था। उसने वर्षों बन्द वो खिड़की खोली और वहां से धूप की एक पतली किरण स्मिता पर पड़ी उस किरण ने मानो स्मिता पर कोई जादुई छड़ी घुमाई हो। स्मिता ने महसूस किया कि अभी–भी कुछ खत्म नहीं हुआ है। वो अभी भी एक नई शुरूआत कर सकती है। उसे अचानक अपने विजयंता होने का एहसास हुआ। सामने के धुंधलाए हुए आईने को साफ कर जब उसने देखा तो उसे वही विजयंता नज़र आई जो कभी सपने देखती थी, किताबें पढ़ती थी, लिखती थी, नाचती थी, हंसती थी और रोती भी थी।

आज बिना किसी को कुछ कहे वह घर से निकल आई थी। कोई बड़ा निर्णय नहीं लिया था और ना ही किसी को बताया था कि वह कहां जा रही है। बस निकल पड़ी थी। आज उसे किशनपुर आकर 10 दिन हो गए थे। घर का आंगन उसने साफ किया था। पुराने तुलसी कोट का रंगा दिया था और बिना भूले रोज शाम ढलते ही वो उसमें दिया जलाती थी। उस दिये की लौ ने उसे स्मिता से विजयंता बनने का साहस दिया था। उसके भीतर कुछ बदल रहा था। वह अपने लिए जीने की कोशिश कर रही थी और आखिर विजयंता ने स्मिता पर विजय पा ही ली।

उसने एक टेक्स्ट आलोक और एक दीप को कर दिया, ''मैं किशनपुर में हूँ।'' और उसने अब फोन भी बन्द कर दिया। स्मिता की भीतर की थकी हुई भावनाएँ फिर से हरियाने लगी थी। उसकी सोच में एक नई ताजगी भर गई थी। उसका मन अब एक बार फिर से जीवन को खुली बाहों से अपनाने को तैयार था। उसकी स्थिति बिलकुल सूखी धरती पर पहली बारिश की बून्दें गिरने के जैसी हो गई थी। रोज किसी ना किसी के घर भोजन का न्योता, गप्पों का सिलसिला, पुरानी यादों का पिटारा स्मिता को पुलकित कर रहा था। वह बहुत खुश थी। पुनः विजू बनने की खुशी। वहां सारे लोग उसे विजू–विजू पूकारते, तो उसे अपने 30 वर्ष पीछे जाने की अनुभूति होती।

इन दस दिनों में उसका जागा आत्मविश्वास उसे बार–बार कह रहा था, ''हां मैं कर सकती हूँ।'' यह केवल शब्द नहीं था। यह वह ज्वाला थी जो संकल्प के अंधेरों को रोशन कर रही थी। ये वह पुकार थी, जो उसे फिर से खड़ा होने का उत्साह भर रही थी। स्मिता बदल रही थी।

27

वह बदल रही थी– धीरे–धीरे! अब उसकी चाल में एक ठहराव था, आँखों में चमक और बातों में दृढता आई थी। वह दृढता जो किसी गहरी समझ और आत्मस्वीकृति से आती है। जो कभी दूसरों की परछाई थी वह अब स्वयं की रोशनी बनती जा रही थी। वह बदलना चाहती थी। वर्षो से थमी हुई उसकी इच्छाएँ अब भीतर दस्तक देने लगी थी। वह अब खुद को जानना और संवारना चाहती थी। यह बदलाव कोई बगावत नहीं था– बल्कि एक शांत लेकिन सशक्त पुकार थी। उसे किसी से कोई शिकायत ना थी– ना आलोक से, ना दीप से , ना चंचल से पर अब वह अपने लिए जीना चाहती थी। वर्षों तक वह पत्नी, बहू, आई और बेटी बनकर जीती रही पर अब उसके भीतर एक स्त्री जागी थी जो सिर्फ स्वयं के लिए सांस लेना चाहती थी। उसे अब दूसरों को खुश करने की मजबूरी नहीं चाहिए थी। वह स्वयं को समझने और स्वयं को अपनाना चाहती थी। वर्षों से छुपी हुई सारी इच्छाओं को वह एक नया रूप देना चाहती थी और वह यह निश्चय कर रही थी।

रात को वह उसी मधुकामिनी के नीचे, अकेली बैठी उसके हाथ में कलम और कुछ कागज थे। वह कुछ सोच रही थी। बार–बार कलम कागज तक आकर रूक रही थी। वह लिखने का साहस नहीं जुटा पा रही थी पर आखिर स्मिता ने विजयंता बनने का मन बना ही लिया।

28

प्रिय

आलोक और रणदीप–चंचल

स्नेह भरा नमस्कार।

जब तुम लोग यह पत्र पढ रहे होगे, शायद तुम्हे बड़ा अजीब लगे। मैं रोज तुम्हारे सामने होती हूँ फिर आज अचानक यह पत्र क्यों?

मैं जानती हूँ यह कितना कठिन है। बिलकुल भी आसान नहीं है। कुछ बाते शब्दों में कहना उतना आसान नहीं होता जितना रोज सुबह टेबल पर चाय पीने बैठना। यह पत्र मेरी उन भावनाओं की आवाज है जिन्हे मैने सालों से खुद में दबाकर रखा था।

मैंने हमेशा जिम्मेदारी से यह घर सम्भाला और मुझे तुम सब पर गर्व है। सबके पसंद का खाना, समय पर कपड़े, रिश्तेदारों की आवभगत, त्योहारों की तैयारी, आलोक–तुम्हारे मित्रों की सारी पार्टियां, दीप–तुम्हारे जन्म दिनों की पार्टियां– मैने सबकुछ किया। शौक से किया। इच्छा से किया। मुझे कोई शिकायत नहीं है क्योकिं यह सब मैने अपनों के लिए किया, प्रेम से किया।

पर अब मेरी उम्र ढल रही है और दीप और चंचल, तुम लोग भी बड़े हो चुके हो। यह सारी जिम्मेदारी मैने कर्तव्य मानकर ही निभाई। लेकिन अब मैं थोड़ा ठहरना चाहती हूँ। सांस लेना और अपने लिए जीना चाहती हूँ।

मैं अब सुबह रसोई में बिताना नहीं चाहती हूँ। सूरज की पहली किरण में नहाना चाहती हूँ। अधूरे छूटे हुए कई किताबों के पन्ने पूरे पढ़ना चाहती हूँ। मैं अपने पसंद के गीत सुनना चाहती हूँ, गुनगुनाना चाहती हूँ। ऐसा नहीं है कि मुझे कभी आलोक–तुम ने रोका हो। पर तुम

लोगों की महत्वकांक्षाओं की रेस में, तुम्हारे साथ दौड़ते–दौड़ते मैं अब थक गई हूँ और बहुत पीछे भी छूट गई हूँ।

इसका मतलब यह नहीं कि मैं तुमसे नाराज़ हूँ या तुम सभी से दूर होना चाहती हूँ। नहीं! मैं आज भी पत्नी हूँ और आई हूँ। बस कुछ पल अपने लिए मांग रही हूँ।

प्रिय आलोक, मैं नौकरी इसलिए नहीं करना चाहती थी कि तुमने मुझे किसी बात की कमी रहने दी पर इसलिए चाहती थी कि मैं 'मैं' बनकर जी सकूं।

मैं वर्षों से एक सहज लय में जीती आ रही हूँ। पर अब मैं अपने जीवन की लय बदलना चाहती हूँ। मैं कुछ दिनों के लिए अकेली रहना चाहती हूँ। अपने में गुम।

यह कोई विद्रोह नहीं है बल्कि एक आंतरिक थकान की कोमल पुकार है। मैं अपनी जिम्मेदारी से भागना नहीं चाहती, अपनी भूमिका को त्यागना भी नहीं चाहती लेकिन भीतर की एक अकांक्षा के लिए, अपने मन को सुनने के लिए, उन खोए हुए सपनो को फिर से छूने के लिए जिन्हें वर्षों मैने दिल की तिजोरी में कैद कर लिया था।

मैं जानती हूँ तुम लोगों ने भी मुझे प्रेम किया लेकिन शायद कभी यह नहीं जाना कि इस सारे उधेडबुन में मैं खुद से कितनी दूर हो रही हूँ।

मेरी इस यात्रा में मुझे तुम्हारा साथ चाहिए। इस नए सफर में जहाँ मैं 'आई' और 'पत्नी' के साथ–साथ 'स्वयं' भी बन सकूं।

हाँ, मैं जानती हूँ कि चंचल और दीप अपनी गृहस्थी को चलाने में सक्षम है और आलोक तुम अपनी चिन्ता करने योग्य हो। तुम सब सफल भी हो। मेरी शुभकामनाएं हमेशा तुम लोगों के साथ है ही फिर भी मैं आज कुछ समय के लिए एक स्त्री बनकर उसी के साथ बिताना चाहती हूँ। आशा है तुम लोग निश्चित ही मेरी इस यात्रा में सहयोग करोगे और मुझे अपने स्वयं को पहचानने में मद्द करोगे। मैं कुछ महिनों के लिए जा रही हूँ। मेरी चिन्ता मत करना। नो न्यूज इज ऑल वेज ए गुड न्यूज। जरूरत पड़ने पर मैं स्वयं ही तुम लोगो से सम्पर्क करूंगी।

दिल मानता नहीं है इसलिए नीचे आप लोगों की सहायता हेतु कुछ टिप्स दे रही हूँ। शायद उनकी तुम्हें जरूरत पड़े और शायद इनके बारे में आलोक को कुछ भी पता ना हो। यह महज एक ऐसी हरकत है जो दिल रखने के लिए मैं कर रही हूँ।

1. सिलेन्डर का नम्बर – सी 5/68628।
2. घर में नौकरों की तनख्वाह – महाराज – 10,000/–
   शान्ति – 8,000/–
   ममता – 8,000/–
   माली बाबा – 5,000/–
   मनोहर ड्रायवर – 10,000/–
   सफाई कर्मचारी – 3,000/–
   धोबी दादा – 3,000/–
3. इन्टरनेट वाई–फाई का पासवर्ड – deep2010
4. घर में आने वाले मासिक किराने वाले का नम्बर – 9977202187
5. सब्जी वाले का नम्बर – 9916000016
6. घर में रोज 05 लीटर दूध आता ह। दूध वाले का नम्बर – 9426313918
7. ए.सी सर्विस नम्बर – 9126535295
8. वाशिंग मशीन सर्विस नम्बर – 07792–999999
9. अनाज सालाना आता है। अभी 06 महिने तक जरूरत नहीं पड़नी चाहिए।
10. प्रति माह 29 तारीख को मीटर रीडिंग वाला आता है, तब घर खुला मिले तो बेहतर।
11. घर में तीन बिजली मीटर लगे है। उनके नम्बर नीचे सफेद पट्टी पर लिखे रखे है।
12. हर दो माह में घर की पानी की टंकी सफाई होती है सफाई करने वाले का नम्बर – 9677921201

इसके अलावा अन्य नम्बर मेरी डायरी में मिलेगे। यह डायरी प्रेस के टेबल के नीचे के ड्रॉवर में मिलेगी।

उम्मीद करती हूँ आप सभी मेरे इस यात्रा से नाखुश नहीं है।

तुम्हारी आई

स्मिता

स्मिता ने अपनी चिट्ठी पर दोबारा नज़र घुमाई। वह मुस्कुराई और उसने उस चिट्ठी को लिफाफे में बन्द कर दिया।

29

ऑन लाईन टिकिट बुक कर वह जाने की तैयारी में लग गई। आज 12 दिनों से वो किशनपुर में थी। उसने अपना घर पुनः समेटना शुरू किया और वहां सबसे विदा लेकर वह निकल गई। मनोहर उसे लेने आया था। वह गाड़ी मे बैठकर बोली, ‘‘हवाई अड्डा चलो’’ मनोहर को कुछ समझ में नहीं आया। वह हड़बडाया, पर चुप ही रहा। बिना कुछ पूछे उसने गाड़ी सीधे हवाई अड्डे की तरफ बढाई।

गाड़ी से उतरते–उतरते स्मिता ने मनोहर के हाथ में लिफाफा दिया। और बोली, ‘‘घर खोलकर इसे डायनिग टेबल पर रख देना और घर बन्द कर चाबी साहब के ऑफिस भेज दो। दूसरी चाबी गार्ड काका के पास रखना। उन्हें कहना सही समय पर रोज ड्यूटी आएंगे और घर का ख्याल रखेगें।’’ मनोहर हक्का–बक्का। चुपचाप उसने स्मिता के पाव पड़े और मुरझाया सा चेहरा लेकर चुपचाप गाड़ी में बैठकर चला गया।

स्मिता चेक–इन करने निकल गई। स्मिता ने दिल्ली की उड़ान भरी। जब उसने हवाई जहाज की सीढियाँ चढी, तो दिल की धड़कनें तेज हवाओं से होड़ करने लगी थी। आँखों में एक अजीब सी चमक थी, उत्साह था और संशय की मिली जुली परछाई। भीतर बैठते ही उसने खिड़की से बाहर देखा। आकाश से मिलने का सपना उसकी पलकों पर बैठा था और जहाज जमीन से ऊपर उठा। धीरे–धीरे जहाज ने ऊंचाईयाँ पकड़ी। नीचे की दुनिया सिमटने लगी और उसके साथ स्मिता की अपने संसार की दुनियाँ भी।

आकाश में जब जहाज तैरने लगा तब एक अनकहा सुकून उसके दिल में उतर आया। बादलों के उसपार खुद को देखना, जैसे कोई स्वप्न जीना था। स्मिता के मन ने धीरे–धीरे उसे समझाया, ‘‘देख तू उड़ सकती है।’’ स्मिता के लिए अकेला सफर करना पहला ही अनुभव था। उसके

लिए यह मात्र एक यात्रा नहीं थी, यह उसकी अपनी जीत की पहली सीढी थी। यह अनुभव था– अपने डर से ऊपर उठने का और खुले आसमान में उम्मीदों के पंख फैलाने का। यह आसमान से नहीं, उस से खुद जुड़ने की पहली उड़ान थी। जब हवाई जहाज रनवे पर तीव्र गति से दौड़ने लगा, तो उसे लगा जैसे सारी यादें और जिम्मेदारियाँ पीछे छूट रही हो। शादी, बच्चे, पति, रसोई, रिश्तों की उलझन– सबकुछ धुधंला सा हो रहा था। उसे उन पक्षियों की याद आई जो अक्सर उसे बुलाती थी। उसके मन ने उन पक्षियों से कहा, ''लो, आज मैं भी तुम्हारे आसमान में उड़ने आई हूँ।'' अगले ही पल उसने खुद को कहा, ''देख तू पंखो से नहीं तो ना सही! पर होसलों की उड़ान भर सकती हो।''

जहाज दिल्ली उतरा। स्मिता सीढियों से उतर रही थी। परंतु पूर्णतः बदली हुई। वह अब एक गृहणी नहीं थी जो सदैव मुस्कुराकर सबको खुश देखना चाहती। वह अब उससे बहुत कुछ ज्यादा थी। वह अब स्वयं के और आसपास के जीवन के और ऊपर उठ गई थी। स्मिता को एहसास हो रहा था– मैं सिर्फ एक आई, पत्नी या बहू नहीं हूँ– मैं एक पूर्ण स्त्री भी हूँ जो उड़ सकती है और कुछ बन सकती है। अभी भी उसमें बहुत कुछ बाकी है। वो उस पर लगे 'वो कुछ नहीं करती, घर में ही रहती है' से अब मुक्त होना चाहती थी। उसे अपने मुक्त होने का एहसास हो रहा था। जिम्मेदारियों की जंजीरों से, अपनों की इच्छाओं की परिधियों से।

दिल्ली उतरकर उसने आगे देहरादून के लिए दूसरा जहाज लिया। जॉली ग्रांट हवाई अड्डे पर उतरकर वह बाहर आई। उसने ऑनलाईन टेक्सी भी बुक कर दी थी। बाहर टेक्सी वाला उसका इंतजार कर रहा था। वह चुपचाप टेक्सी में बैठ गई और हर्षिल की दिशा में निकल पड़ी।

07–08 घंटों की यात्रा थी। उसने शांति से अपना सिर सीट पर टिकाया। उसे नींद नहीं आ रही थी। बीते जीवन का चल–चित्र उसकी आँखों में खेल रहा था। वो मशीन सी बनी सारी दिनचर्या। सुबह की चाय, बच्चों की चिन्ता, पति की फाईले, उसके जुते–मोजे– उसका पूरा दिन यूँ ही ढल जाता– सबके लिए– बस खुद से मिले बिना। उसने कभी किसी से शिकायत नहीं की थी। बस सब निभाया था– जीवन की यह समय सारणी उसने बिना थके, बिना रूके पूर्ण कर ली थी। वो बाहर

की दुनिया के लिए, संतुष्ट, सफल, सुखी गृहणी 'स्मिता' थी परन्तु उसके अन्दर अब भी 'विजयंता' मौजूद थी। जो अपने हिस्से का एक क्षितिज मांग रही थी।

आज वह अकेली थी, पर डरी हुई कतई नहीं थी। वर्षों से उसके भीतर छुपी हिम्मत आज बाहर आने को बेताब थी। आज वह पुनः विजयंता बनने जा रही थी। शाम होते–होते वह हर्षिल पहुँच गई। गाड़ी से उतरी। उसके कदमों में एक धीमा सा आत्मविश्वास था– ठहराव भरा– पर स्पष्ट। उसने अपना बैग हाथ मे लिया और वह चलने लगी। वह केवल एक बैग नहीं था, बल्कि उसकी अपनी पहचान की पहली डोर, जो उसने अपने हाथ में थामी थी।

सूरज के ढलते–ढलते उसने रूककर हिमालय की तरफ देखा। मानो वो अंधकार को अपनाने, नये उजाले की उम्मीद से स्थिर खड़ा था। सूर्यास्त हो गया था। अचानक छाए अंधकार से स्मिता थोड़ी विचलित हो गई। उसने यहाँ वहाँ देखा। उस छोटे से गांव में बहुत सारे होटल नहीं दिख रहे थे। गिने–चुने ही बोर्ड लगे दिखे। उनमें से एक ठीक–ठाक होटल की तरफ वह बढ़ ही रही थी कि एक दस–ग्यारह साल की बच्ची उसकी तरफ आई और बोली, ''नमस्ते अम्मा! क्या आपको रहने की जगह चाहिए?'' ''हाँ बेटा मैं अभी–अभी यहाँ आई हूँ और कुछ अच्छा सा होटल ढूंढ रही हूँ।'' ''तो आईए ने मैं आपको हमारे घर ले चलती हूँ। अम्मा–बाबू जी बहुत खुश होगे और हमारा घर खाली भी है।'' उस छोटी सी बच्ची ने बड़ी हुनर के साथ स्मिता के सामने विकल्प रखा था। स्मिता ने भी सोचा, ''अनजाने से किसी होटल में रहने से पहले यही देख लेना उचित रहेगा। ये बच्ची आखिर कहना क्या चाह रही है।'' कहते हुए स्मिता उसे बोली, ''चलो। कहां है तुम्हारा घर?'' ''चलो'' कहते हुए उस बच्ची ने स्मिता का हाथ पकड़ा और उसे ले जाने लगी। ऐसे जैसे मानो वो फैसला कर चुकी थी। स्मिता कौतुहल से उस बच्ची को देखने लगी और उसका हाथ पकड़कर चलने लगी। थोड़ी ही दूरी पर जाते ही बच्ची ने उसको घर की तरफ इशारा करते हुए कहा, ''वो देखो अम्मा, वो लाईट दिख रही है ना वही हमारा घर है। पास ही में है आपको और बस 05 मीनिट चलना पड़ेगा।'' थोड़ी ही दूरी पर उसका छोटा परन्तु सुन्दर दो मंजिला मकान था। घर के सामने एक बोर्ड लगा था 'होम स्टे'।

घर आते ही बच्ची तेज आवाज में बोल पड़ी, ''देखो बाबू जी मैं मेहमान लाई हूँ।'' घर में से उस बच्ची के माता और पिता बाहर आ गए। उन्होंने स्मिता का स्वागत किया। ऊपर की मंजिल पर दो कमरे बने थे। लकड़ी का घर था। सुन्दर था। ऊपर के यह दो कमरे शायद महमानो के लिए ही बने थे। उनकी सजावट काफी अच्छी की थी। साफ–सुथरे दिख रहे थे। लकड़ी का बना यह सुन्दर सा घर था। छत टीन का बना था पर अन्दर से लकड़ी का फॉल्स सीलिंग कमरों को सुन्दर बना रहा था। एक पलंग, एक अलमारी, टेबल और दो कुर्सियां इतना ही सामान कमरे में था। सारा सामान लकड़ी का बना था। कमरे से सटी हुई एक बालकनी थी। जो विशाल हिमालय के दर्शन कराती थी। घर और हिमालय के बीचों–बीच भागीरथी नदी बह रही थी। उसकी कल–कल साफ सुनाई दे रही थी।

स्मिता ने खिड़की खोली। बाहर अंधेरा था पर चांदनी रात में बर्फ से ढके हिमालय की चोटियां चमक रही थी। विशाल खूबसूरत हिमालय और बहती हुई भागीरथी के प्रति स्मिता इतनी आकर्षित हुई कि बिना ज्यादा कुछ सोचे ही उसने सामान ऊपर लाने को कहा। वह बच्ची उसकी माँ को लेकर ऊपर आ गई। माँ ने पूछा, ''दीदी, आप अकेली हैं क्या?'' स्मिता ने बिना कुछ बोले केवल सिर हिलाया। माँ बोली, ''कोई चिन्ता ना करो। हम सब घर में ही रहते है और हम आपका पूरा ख्याल रखेगे। आपको गरमा–गरम खाना, चाय, हम सब सेवा करेंगे।'' स्मिता खुश हो गई यह वैसी ही जगह थी जो स्मिता हमेशा सोचा करती थी। नीचे से चाय तैयार होने की आवाज आई। वह उस बच्ची की दादी थी। माँ और बच्ची स्मिता को नीचे आने का न्योता देकर नीचे उतर गई। एक बार पुनः स्मिता ने कमरे की तरफ नज़रे फेरी। कमरे से बाथरूम भी लगा हुआ था। स्मिता ने सबसे पहले नल खोलकर मुँह पर ठंडे पानी के फपके मारे। एक क्षण वह सहर गई पानी बर्फ सा ठंडा था। पर स्मिता की थकान दूर करने वाला था। उसने मुँह पोछा और वह नीचे उतरी। घर के सारे लोगों से परिचय हुआ। बच्ची का नाम कंचन था।

अब कंचन के घर रहते–रहते स्मिता को 59 दिन हो गए थे। हरी–भरी वादियों की गोद में बैठकर जब हल्की–हल्की हवा चेहरे को सहलाती थी, तब उसके भीतर कुछ टूट नहीं रहा था, बल्कि कुछ जुड़

रहा था। जैसे जीवन की थकी हुई नसो में कोई मीठी शान्ति उतर रही हो। पक्षियों का मधुर कलरव, बहती हवा की सरगम और सामने खड़े सफेदी से ढके पहाड़ों का स्थिर मौन– सब मिलकर एक ऐसी अनुभूति रच रहे थे जो ना शब्दों में बध सकती है और न ही विचारों में ठहर सकती है। स्मिता को ऐसा महसूस हो रहा था कि यह प्रकृति नहीं उसकी आई है जो उसे अपनी गोद में खिला रही है। उसके बालों में धीरे–धीरे उंगलियाँ फेरकर उसकी हर थकान को शनैः–शनैः मिटा रही हो। उस क्षण मन संसार की आपा–धापी से ऊपर उठकर बस 'होने' भर का स्वाद चखा रहा था। उसे बहती धारा ऐसा महसूस करा रही थी कि मानो वो किसी अदृश्य झरने में स्नान कर रही हो– शांत, निर्मल और पुनर्जागृत। यही तो असली विश्राम था, यही तो था स्मिता के जीवन का पुनर्जन्म।

उसके मन में संतोष था। जीवन की सारी राहें अब उसे आसान सी लगने लगी। जैसे वर्षों से भटकती कोई आत्मा अचानक अपना मार्ग पा ले। स्मिता के भीतर भी ऐसा ही कुछ इन दिनों घट रहा था। उसकी आँखों में चमक आ गई थी। हृदय एक अद्भुत ऊर्जा से भर गया था। उसकी मुस्कान अब केवल बाहरी स्मित हास्य नहीं रही। उसकी आत्मा मुस्कुराकर कह रही थी, ''मैं कर सकती हूँ– मैं कर चुकी हूँ।'' उसके इस बदले आत्मविश्वास ने उसके जीवन की दिशा बदल दी थी। वह यह सच्चा बदलाव अब भीतर से महसूस कर रही थी। और यह बल उसके जीवन को एक नया अर्थ दे रहा था।

बरसों तक उसने खुद को परिवार के भीतर किसी कोने में समेट रखा था। लेकिन आज बरसों बाद जब उसने पहली बार अपने लिए कोई निर्णय लिया, जब बिना किसी से पूछे उसने यह यात्रा की, अपनी वह सारी इच्छाऐं पूरी कर रही थी, तब मन में एक अनजानी सी लहर उठी। एक संतोष की लहर। जीवन ने उसे कई बार थकाया हो पर अब वह एक थकी हुई स्वयं से हारी हुई स्त्री नहीं रही। वह एक जागती हुई चेतना थी। संतोष से भरी और आत्मबल से सजग।

30

आज 60 वां दिन था। आलोक हर्षिल स्मिता को ढूंढते आया था। इस बीच स्मिता सभी घरवालों से हिल–मिल गई थी। सभी के साथ बैठकर भोजन करती और तो और उसने एक नई पहल भी की थी। दोपहर के समय वो गांव के बच्चों को इक्टठा कर उन्हें रोज 02 घंटे पढ़ाती थी। गांव छोटा था और स्मिता की क्लास की बात आग जैसी गांव में फैल गई थी। क्लास के कारण पूरा गांव अब स्मिता को जानने लगा था। बहुत से बच्चे अपनी समस्याऐं लेकर उसके पास पहुंचते थे। छोटे बच्चों की क्लास लेने के बाद वह एक–एक कर सारे बच्चों की समस्याऐं सुलझाने में उनकी मद्द करती थी। गांव वाले उसे अब 'टीचर दादी' के नाम से पुकारते थे। स्मिता बहुत खुश थी। बच्चों को पढ़ाते–पढ़ाते सूरज का ढलता रूप देखने वो रोज भागीरथी के किनारे पहुंच जाती थी। डूबते हुए सूरज से रोज वो यही सीखती थी कि अंधेरे से मत डरो उसे अपनाओ। इस उम्मीद के साथ कि जल्द ही पुनः इस धरती पर सूरज अपनी रोशनी बिखेरेगा। अंधेरा मात्र कुछ पलों का संघर्ष है।

जीवन की आपाधापी में जब मन थककर चूर हो जाता है। तब कभी कभी कोई छोटी सी बात, एक सोंधी सी खुशबू, किसी निरागस की मुस्कान या प्रकृति का शांत अलिंगन, भीतर कुछ ऐसा छू जाता है। जैसे आत्मा को नए प्राण मिल गए हों। स्मिता की स्थिति भी ऐसी ही थी। वह अब ताजगी से ओत–प्रोत और सकारात्मक ऊर्जा से परिपूर्ण हो गई थी। यह बात कि सारा गांव उसे जानता है उसे एक नया उत्साह दे रहा था और नया आत्मविश्वास!

31

इधर दीप अपनी ट्रेनिंग पूर्ण कर घर लौटा। घर को ताला देखकर एक क्षण के लिए वह भी थोड़ा विचार में पड़ गया। फिर ज्यादा कुछ ना सोचते हुए उसने घर में प्रवेश किया। गार्ड दादा ने घर खोल ही दिया था और घर अन्दर से साफ–सुथरा भी दिख रहा था। वह पानी पीने रसोई घर की तरफ मुड़ा तो अचानक उसकी नजर डायनिंग टेबल पर रखे हुए लिफाफे की तरफ गई। उसने पानी पीते–पीते ही लिफाफा खोला वह लिफाफा अपनी आई के हस्ताक्षर का देख वह सक–पका गया। उसने हाथ के पानी की ग्लास नीचे रखते हुए कापंते हाथों से लिफाफा खोला। उसे पढकर तो उसके होश ही उड़ गए। वह बहुत डर गया। क्या करूं, क्या ना करूं उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। सबसे पहले उसने तुरंत ही चंचल को फोन लगाया और उसे तुरंत निकलने को कहा। आलोक तो बहुत दूर था। तो उसने तत्काल ही आलोक को एक मेल भेज दिया, ''आई गोज मिसींग, कम इमेजिएटली।''

मेल देखते ही आलोक का फोन आया। दीप ने उन्हें सारी स्थिति बताई। वह काफी घबराया हुआ था। दूसरे ही दिन आलोक भी निकल कर आ गया। उसके पहुंचने के पहले चंचल भी पहुंच गई थी। उन दोनों की हालत देखकर आलोक भी घबरा गया। दीप ने वह लिफाफा आलोक के सामने रखा। उसमें उस पत्र के अलावा, आलोक के दिये हुए दोनों डेबिट और क्रेडिट कार्ड भी रखे हुए थे। उसने डरते हुए स्मिता को फोन लगाया। फोन बन्द आ रहा था। उसने तुरंत गाड़ी निकाली और वो दीप के साथ किशनपुर के लिए रवाना हो गया।

किशनपुर पहुंचकर उसने सारी कहानी जानी पर वो आगे कहां गई है किसी को पता ना था। सब यही समझ रहे थे कि उनकी 'विजू' लौट गई। आलोक ने भी उन्हें ज्यादा कुछ बताना उचित नहीं समझा। ''मैं यहीं से गुजर रहा था तो सोचा जाते–जाते उसे भी लेता जांऊ'' यही

बहाना बताकर वो चुपचाप लौट आया। आलोक काफी परेशान हो गया था। पहली बार एक अजीब से डर से वह कांप उठा। कहां जाऊं, किसे पूछूं, कहां ढूढू उसे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। अचानक उसे अंजली की याद आई। इस बीच दीप बार–बार स्मिता का फोन नम्बर भी लगाने की कोशिश में लगा था परंतु फोन बन्द ही आ रहा था। आलोक की हालत देखकर दीप भी डर गया था।

आलोक ने अंजली की याद आते ही तत्काल उसे फोन लगाना ही बेहतर समझा। अंजली का फोन व्यस्त आ रहा था। बार–बार आलोक उसे फोन लगा रहा था। व्यस्तता के चंद वह मिनिट भी अब आलोक को घंटों से लग रहे थे। आखिर अंजली को घंटी चली गई। पहले तो अंजली ने भी उसे कुछ भी पता ना होने की बात कही। फिर उसने हसंते हुए आलोक से पूछा, ''इतने घबराने की क्या जरूरत है?'' उसकी वह कुटिल हंसी आलोक को बहुत कुछ समझा रही थी। फिर आलोक अंजली के सामने रूआवना सा हो गया। अंजली को भी उसपर दया आ गई और अंजली ने उसे सारा किस्सा सुना दिया। उसने आलोक को स्मिता के हर्षिल में होने की बात भी बता दी और यह जोर देकर कहा कि स्मिता ने उसका नम्बर देने से साफ मना किया है। वह मुस्कुराकर यह बोली, ''मेरी उससे रोज बात होती है और वह बहुत खुश है।'' फिर भी आलोक से रहा ना गया और उसने बार–बार अंजली को, ''प्लीज दे दो, प्लीज दे दो'' की रट लगा दी।

उसके ठीक और सुरक्षित होने की खबर सुनकर आलोक को थोड़ी राहत सी महसूस हो गई थी परन्तु अब वह उससे बात करने और अधिक उतावला हो रहा था। अंजली ने भी अब आलोक को सबक सिखाने का ठान लिया और वह बोली, ''तुम लौट आओं। पहले मैं उससे बात करती हूँ क्योंकि यह पूछना तो मेरा फर्ज बनता है कि तुम्हे उसका नम्बर दूं या ना दूं।'' आलोक मायूस होकर किशनपुर से लौटने लगा। वापस रास्ते भर वह बार–बार अंजली के फोन का इंतजार कर रहा था। वह काफी विचलित हो गया था। रात गहराती जा रही थी और उसके मन की बैचेनी और बढती जा रही थी। चारों ओर एक सन्नाटा छाया था। वह घर तो पहुंच गया पर स्मिता की अनुपस्थिति घर के हर कोने को खाली कर रही थी–उसका बिना कुछ बोले घर में यहां से वहां होते रहना,

रसोई घर से आने वाली रोज नए खाने की महक, उसके हाथ की बनी चाय और सबसे ऊपर– बस– उसका घर में होना था!

सब कुछ अचानक छिन सा गया था। उसका मन बार–बार सवाल कर रहा था– कहां होगी, कैसी होगी? यह चंद घंटों की प्रतिक्षा जैसे आलोक की आत्मा को कचोट रही थी और आज पहली बार उसे अचानक अकेले होने का एहसास हुआ। यह अकेलापन प्रत्येक क्षण को बोझिल बना दे रहा था।

और अखिर रात 10:00 बजे के बाद अंजली का फोन आया।

वह चंद घंटे आलोक और दीप पर बहुत भारी थे। किशनपुर से लौटते हुए आलोक को एक–एक कर अपनी सारी गलतियों का एहसास हो रहा था। उसे यह महसूस हुआ कि विवाह कर लाई हुई स्मिता और आज की स्मिता में कितना जमीन–आसमान का अंतर आया था। उसकी नज़रों में स्मिता की वह पुरानी मासूम, निरागस, हसती, खिल–खिलाती छबि बार–बार उसे और आत्मग्लानि से भयभीत कर रही थी।

वह घर पहुंचा। उसने ठंडे पानी से अपना मुंह धोया और चार ग्लास लगातार पानी पी गया। घर में घुसते ही चंचल दौड़ते हुए आयी, ''क्या हुआ? आई की कुछ खबर मिली? आखिर आई गई कहां?'' दीप भी घबराया हुआ था। बोला, ''बाबा, बताओ ना? क्या हुआ? आई कहां है?'' उसके चेहरे पर भी बैचैनी साफ झलक रही थी। इस अंजाने भय और प्रतिक्षा ने उसके भीतर भी एक ऐसा खालीपन भर दिया जिसे वह समझ नहीं पा रहा था। तीनो ही भय–भीत चेहरे लेकर खामोश थे। घर में एक डरावना सा सन्नाटा छाया था।

आलोक का धबराया और सूखा मुंह कुछ बोलने के लायक नहीं था। चंचल चुपचाप चाय लेकर आई। दो घूट चाय पीकर उसने वह चाय भी अलग कर दी और उसने डरते–डरते अंजली के दिये हुए नम्बर पर स्मिता को फोन लगाया। घंटी तो गई पर वहां से किसी ने फोन नहीं उठाया। आलोक बार–बार फोन लगा रहा था और आखिर कंचन ने फोन उठाया और कहा, ''टीचर दादी अभी सो गई है। कल सूर्योदय के बाद ही मिल पायेंगी और उसने खट्ट से फोन रख दिया। अब रात भर

इंतजार करना आलोक के बस में नहीं था। उसने फटाफट चार कपड़े बैग में डाले और वह हवाई अड्डे की तरफ ऐसा भागा जैसे हवाई जहाज हाथों से पकड़ने ही वाला था। दिल्ली पहुंचकर वह आगे हर्षिल के लिए रवाना हो गया।

32

आज आलोक हर्षिल पहुंच गया था। दोनों की चाय खत्म हुई। स्मिता उठी और अपने कमरे की ओर चल पड़ी। पीछे–पीछे आलोक भी था। कमरा देख आलोक बोल पड़ा, ''कमरा बहुत सुन्दर है। उस होटल से भी अच्छा।'' स्मिता ने केवल मुस्कुरा दिया और सिर हिला कर हां कह दिया। इतने में कंचन दौड़ते हुए ऊपर आयी और बोली, ''टीचर दादी–टीचर दादी अम्मा कह रही है कि नाश्ता तैयार है। लगायें?'' स्मिता ने कहा, ''पर आज दो प्लेट लगाना बेटी, हमारे घर मेहमान आए है।'' आलोक की तरफ तिरछी नजरों से देखकर स्मिता गालों में ही मुस्कुरा दी। ''जी अच्छा'' कहते हुए कंचन फुदकते–फुदकते नीचे भाग गई।

स्मिता और आलोक कुर्सी ड़ालकर हिमालय को देखते चुपचाप बैठे था। कोई संवाद नहीं। लम्बे समय के बाद दोनों आमने–सामने थे। आँखों ने आँखों को टटोला, पर होठों तक कोई संवाद नहीं आया। मौन ही मुखर था। हिमालय से आने वाली ठंडी हवा भी कुछ सहमी–सहमी सी लग रही थी। जैसे वह भी उस पुराने संबंधों की परतों को छेडने से डर रही थी। दोनों की भावनाऐं बह रही थी पर शब्द अटक रहे थे। उस क्षण में ना कोई क्षमा थी, ना कोई शिकायत– बस एक गूंगा सा तूफान था, जो भीतर सबकुछ उलट रहा था। दोनों के बीच एक भीगा हुआ मौंन किसी गज़ल की तरह बह रहा था।

स्मिता का 'मेहमान' शब्द आलोक को ऐसा चुभा जैसे कोई तीक्ष्ण बाण हृदय को घायल कर गया हो। फिर एक हल्की सी मुस्कान ने स्मिता के होठों को छुआ और आलोक ने धीरे से एक गुनहगार की तरह अपना सिर झुकाया। स्मिता की आँखो का सामना करने का साहस आलोक नहीं कर पा रहा था।

स्मिता और आलोक की शादी को 35 साल हो गए थे। दो लोग, जो कभी जीवन का सपना एक साथ देखते थे। धीरे–धीरे जीवन के भार तले अजनबी हो गए थे। आलोक को महत्वाकांक्षा का लालच और ऑफिस की दुनिया निगल गई थी और स्मिता को घर की चार दीवारी खा गई थी। बातचीत अब सिर्फ जरूरत भर से हो रही थी और भावनाऐं दराज में बन्द चिट्ठियों की तरह पड़ी थी। और फिर स्मिता बिना कोई शोर किए एक दिन घर छोड़कर चली आयी थी। अपने आप को ढूढने! ना कोई इल्जाम, ना कोई झगड़ा, ना कोई शिकायत, ना कोई विदाई बस एक सन्नाटा छोड़ गई थी जो अब पूरे घर में गूंज रहा था। उस सन्नाटे ने सब को झंकझोर कर रख दिया था।

आलोक को समझ में नहीं आ रहा था कि शुरूआत कहां से करे। उसके मन में जैसे कोई अनकही चुप्पी घुल गई थी– भारी, गीली और आत्मा को चीरती हुई। उसके चेहरे पर अपराध बोध की परछाई साफ–साफ नज़र आ रही थी। यह बात अलग थी कि उसने जान बूझकर कुछ भी नहीं किया था, लेकिन अंजाने में जो हो गया था वह उसे भीतर तक घात कर रहा था। शब्द तो मौन थे पर मन में एक चीख गूंज रही थी– ''काश ऐसा ना हुआ होता'' उसके और स्मिता के रिश्तों की दिवार पर एक अनचाही दरार वह स्वयं देख रहा था। पछतावे की आग धीमे–धीमे उसे भीतर–भीतर जला रही थी। ना कोई सजा, ना कोई माफी बस एक अबोला अपराधबोध! उसकी हर सांस बोझिल हो रही थी।

स्मिता ने आलोक की आँखे देखी। वह डब–डबा रही थी। उसकी आँखों में एक नमी थी जो उम्र से नहीं, अपराधबोध के अनकहे भार से आई थी। स्मिता ने शांत स्वर में बस इतना ही कहा, ''आलोक तुम मुझे क्यों नहीं समझ सके?'' एक अधूरे संवाद की तरह स्मिता चुपचाप खिडकी से बाहर देख रही थी।

सूरज की हल्की घूप उसकी हथेलियों पर पड़ रही थी जैसे कोई अनदेखा स्नेह उसे सहला रहा हो। अचानक उसने आलोक के हाथों का स्पर्श अनुभव किया। आलोक ने स्मिता का हाथ कस कर दबाया। स्मिता को वह क्षण याद आया जब पहली बार आलोक ने शादी के बाद लौटते हुए गाड़ी में उसका हाथ दबाया था, यह कहते हुए, ''यह हाथ कभी ना

छोड़ने के लिए पकड़ा हूँ।'' उन दोनों की आँखों से बहती हुई भावनाएँ तब भी और आज भी भाषा से परे थी।

आलोक ने ना कोई सफाई दी और स्मिता ने ना कोई प्रश्न किया। आलोक ने स्मिता की गोद में अपना सिर रख दिया और अनायास ही स्मिता उसके घुंघराले पर अब थोड़े–थोड़े सफेद हुए बालों में अपनी उंगलियां फेरती रही।

नीचे से आवाज आई, ''टीचर दादी, नाश्ता तैयार है, जल्दी आओ'' स्मिता ने आलोक को अपने हाथों से उठाया और बोली, ''चलो नाश्ता करते है।'' दोनों ने मिलकर नाश्ता किया। दोनों के चेहरे का तनाव अब काफी कम हो गया था। आलोक को भी बहुत हल्का महसूस हो रहा था। गरमा गरम पराठा और आलू का झौल दोनों ने बड़े मजे से खाया।

इतने में एक बच्चा दौड़ता हुआ अन्दर आया, '' आज्जी.....! मेरी प्यारी आजी! हम आ गए।'' रूद्र को देखकर स्मिता बिना हाथ थोए ही उसकी ओर दौड़ी, ''बच्चा! मेरा प्यारा बच्चा!'' उसने उसे गोद में उठाया और वो उसे चूमने लगी। रूद्र को देखकर स्मिता मोम सी पिघल गई। एक पल में वह सब कुछ भूल गई। पीछे–पीछे दीप और चंचल भी कमरे में आए। सभी की आँखे भरी हुई थी पर ऊपर देखने का साहस दोनों में नहीं था। दोनों चुपचाप अपराधी से खड़े थे। स्मिता ने ही आगे बढ़कर दोनों को गले लगाया और दीप फूट–फूटकर रोने लगा। चंचल कुछ कहने के लिए हो ही रही थी, कि स्मिता ने उसे चूमते हुए कुछ ना कहने को कहा।

दूर कोने में बैठकर कंचन यह सब देख रही थी। अचानक वह भी दौड़कर आलोक के पास आयी और उसका हाथ पकड़कर बोली, ''अंकल, आप टीचर दादी को लेकर तो नहीं जाओगे ना?'' और वह स्मिता के पास आकर खड़ी हो गई। कंचन बोली, ''अंकल आप दादी की बिलकुल चिंता ना करो। मैं उनका बहुत ख्याल करूंगी। मैं रोज दादी के पास ही सोती हूँ और दादी मुझे कितनी अच्छी कहानियाँ सुनाती हैं। वो चली जाएगी तो हमें बहुत बुरा लगेगा।'' उस नन्हीं सी जान के आँखों में भी आसू झलक गए और वह स्मिता को बोली, ''हम आपको नहीं जाने देंगे टीचर दादी।'' स्मिता कुछ नहीं बोली और उसने कंचन को गोद में उठा लिया और उसके माथे पर हाथ फेरती रही। दीप आगे बढा और बोला,

''रूद्र चलो बेटा आजी का सामान पैक करो।'' चंचल और रूद्र ऊपर चले गए।

इस बीच कंचन वहां से भाग निकली। वह पूरे गांव में दौड़ती फिरी यह कहते हुए, ''टीचर दादी जा रही है– टीचर दादी जा रही है।'' देखते ही देखते पूरा गांव कंचन के घर के सामने इकटठा हो गया था। उन्होंने एक दिन और रूकने का निवेदन किया।

दूसरे दिन गांव वालों ने स्मिता की विदाई का कार्यक्रम रख दिया था। यह विदाई मात्र एक औपचारिकता नहीं एक गहन अनुभूति थी। स्मिता गांव के बच्चों को केवल पाठ नहीं पढ़ाती रही बल्कि जीवन के अर्थ सिखाती रही थी। उसके शब्दों में स्नेह था, अनुशासन में ममता थी और उसकी आँखों में हर बच्चे के लिए उज्जवल भविष्य का सपना। इतने कम समय में ही वह पूरे गांव वालों से इतनी हिल–मिल गई थी कि बच्चे तो बच्चे उनके माँ–बाप, दादा–दादी भी आज स्मिता के जाने की खबर सुनकर उदास थे। आज जब स्मिता इस छोटे से गांव से विदाई ले रही थी, प्रत्येक व्यक्ति की आँखों में एक ऐसी नमी थी जैसे स्मिता से उनका वर्षो का संबंध था। सारा दृश्य देखकर आलोक, दीप और चंचल अभिभूत थे और कहीं ना कहीं अपनी गलतियों का पछतावा मन ही मन में कर रहे थे। सबके मन में आज यही बात थी, ''काश ऐसा नहीं होता।''

33

गाड़ी में बैठते ही स्मिता ने नम आँखों से सबसे बिदाई ली। उसने शांत मन से आँखे मूंद ली। अचानक उसके सामने थे 'बाबा'। वो उसे कह रहे थे, ''विजयंता– यह केवल नाम नहीं है बल्कि एक सम्पूर्ण भावना है। एक प्रतीक है उस शक्ति का, जो हर संघर्ष के परे विजय की ओर अग्रसर होती है। 'विजयंता' का अर्थ है जीत। लेकिन यह जीत केवल रणभूमि की नहीं होती; यह आत्मबल की, धैर्य की और नारी मौन संघर्ष की विजय होती है। यह नाम अपने आत्मविश्वास की गूंज है, जो कहती है, तुम दृढ हो, विजयी हो। विजय– एक प्रेरणा है– हर उस स्त्री के लिए जो अपने भीतर छिपी असंख्य हारों के बावजूद उनपर विजय पाकर मुस्कुराकर कहती है, मैं अब भी विजयंता हूँ।''

पूरा गांव उसे छोड़ने आया था। गाड़ी आगे बढ गई। स्मिता ने अपने पर्स से डायरी निकाली– वही डायरी– पुरानी डायरी– विजयंता की डायरी– जिसमें कभी वो मन की बातें और कुछ कवितायें लिखा करती थी और स्मिता ने लिखा,

''आज मैं अपने लिए हूँ।

आज मुझे अपने लिए जीना है,

थोड़ा ही सही पर केवल अपने लिए।

अब जब मैं लौटूंगी मैं वही नहीं रहूंगी।''

34

वह घर लौटी, पुराने गिलों – शिकवों का मौन विसर्जन कर। सब चीजें जहां की तहां थी पर शायद सारी चीजे उनपर प्रेम से हाथ फेरने वाले का इंतजार कर रही थी। नहाकर स्मिता पुनः रसोई घर मैं पहुंची। अपनी सजाई रसोई की महक ने उसे मोहित कर दिया पर आज उसने अपने आप से सवाल पूछा, ''क्या मैं इसे अब अपने तरीके से रखूंगी?'' उसके मन ने तत्काल जबाब दिया, ''हां, तुम अपने तरीके से जियोगी।'' और स्मिता मुस्कुराई।

इतने में आलोक ने आवाज लगाई। लेपटॉप पर कुछ काम करते–करते ही! बिना ऊपर देखे, ''स्मिता जरा बढियां चाय बना दो डियर। अरसा हो गया तुम्हारे हाथ की चाय पीये।'' और वहां से जबाव आया, ''जरूर पर थोड़ा रूको अभी–अभी मैने अपनी चाय शुरू ही की है। जरा शांति से चाय पी लू फिर तुम सब की चाय चंचल बना देगी। मुझे थोड़ा जरूरी फोन करना है।'' वह उठी और चाय के साथ अखबार में डूब गई। चाय पीते–पीते बोली, ''चंचल बेटी जरा बाबा के लिए भी चाय बना दो। मैं थोड़ा जरूरी काम कर रही हूँ'' और स्मिता ने एक फोन लगाया।

स्मिता में एक बड़ा बदलाव आया था। वह आज भी घर सम्भालने तैयार थी पर अब वह घर के सारे कामों में सभी को अपनी–अपनी जिम्मेदारियां भी समझाना चाहती थी। वो अब सिर्फ जिन्दगी जीना नहीं चाहती थी वो उसे महसूस भी करना चाहती थी।

घर वापस लौटने पर वह एक नई और ताजी धूप की तरह जागी। तड़के, हमेशा की तरह सबसे पहले। स्मिता के मन में जो अवसाद और अवहेलना के धागे थे वह अब टूट गए थे। उसने उठकर आईना देखा। यह वही चेहरा था, जो वर्षों से जिम्मेदारियों और कई अनकहे त्यागों से

धुंधला पड़ा था। वही चेहरा आज एक नई चमक से दमक रहा था। आत्मबोध और साहस की चमक! बीते दिनों की कटु स्मृतियों में उसे बांधने का साहस और क्षमता नहीं थी। उसने अपनी धड़कनों की आवाज़ सुनी– वे पहले जैसी थकी हुई कतई नहीं थी; उनमें एक दृढ़ लय थी जैसे कोई संकल्प उसे अलोकित कर रहा हो। स्मिता ने मुंह पर पानी मारा और निर्णय लिया कि अब वह अपने लिए जीएगी, अपनी इच्छाओं के लिए, अपने सपनों के लिए! उसने महसूस किया कि जीवन किसी और की स्वीकृति का मोहताज नहीं है, उसका अस्तित्व 'स्वयं' में पूर्ण है। अब वह पढ़ेगी, लिखेगी, यात्रा करेगी, हँसेगी– और सबसे बढ़कर, वह अपने 'होने' का उत्सव मनाएंगी। वर्षों के बाद उसे लगा की वह अपने जीवन की कथा की स्वयं नायिका है, कोई सहायक पात्र नहीं है। वह 'स्मिता' तो है पर सबसे पहले वह 'विजयंता' है।

आज भी स्मिता ने सबके लिए नाश्ता बनाया और डायनिंग टेबल पर रख दिया। खुद नाश्ता करने सबसे पहले बैठ गई और टेबल पर सबके टिफिन के साथ एक नोट छोड़ा, ''हेलो गुड मार्निग मै निकल रही हूँ, नाश्ता रखा है, सब लोग कर लेना। आज से मैंने आनन्दवन वृद्धाश्रम में मैनेजर की जिम्मेदारी उठा ली है। मुझे जल्दी जाना पड़ेगा और आते–आते शाम हो जाएगी। तो रात को मिलते है, बाय!''

गाड़ी में बैठकर स्मिता निकल गई।

लेखक परिचय

नाम :— **प्रो. डॉ. स्वाती चांदोरकर**

पति :— **डॉ. संजीव चांदोरकर**

शिक्षा :— **पी.एच.डी. अंग्रेजी**

परिचय :— वर्तमान में प्रधान मंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस शासकीय स्वामी विवेकानंद स्नातकोत्तर महाविद्यालय में अंग्रेजी विषय की प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष है। पी.एच.डी. हेतु रानीदुर्गावती विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध परिवेक्षक के रूप में अंग्रेजी विषय में शोधकर्ताओं को सतत मार्गदर्शन का कार्य विगत 10 वर्षों से कर रही हैं। आपके मार्गदर्शन में अनेक शोधकर्ताओं को पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त है। महिला सशक्तिकरण, इंडियन इंग्लिश राईटिंगस तथा अन्य सामायिक विषयों पर आपके राष्ट्रीय तथा अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर 50 से भी अधिक शोध पत्र प्रकाशित है। सामाजिक सरोकार में आप विगत 30 वर्ष से सक्रिय हैं तथा महिलाओं की साक्षरता, अधिकार एवं सशक्तिकरण के

क्षेत्र में आपकी विशेष रूची है। सामाजिक क्षेत्र के लिए आप राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कृत हुई हैं।

आपकी पहली पुस्तक 'मेरी नर्मदा परिक्रमाः एक यात्रा अनुभव से अनुभूती', अपनी पैदल 3200 किमी की नर्मदा परिक्रमा के दौरान आये अनुभव तथा उनके माध्यम से हुई अनुभुतियों को व्यक्त करती है। परिक्रमा के दौरान मां के आँचल में गुजारे हुये जीवन प्रवाह का संकलन है। यह पुस्तक मराठी भाषा में भी अनुवादित है। यूट्यूब चैनल पर आपके नर्मदा परिक्रमा वाहन मार्ग के वीडियो काफी लोकप्रिय है और अनेक नर्मदा भक्त उसके अनुसार आज नर्मदा परिक्रमा कर रहे है।

वैदेही विद्रोह आपका पहला उपन्यास है जो घुटन भरी जिन्दगी के प्रति विद्रोही प्रवृत्ति, आधुनिकता की स्वीकृति, परंपरागत मिथकों को तोड़ते हुए अपनी आकांक्षाओं को साकार करने वाली स्त्री का जीवंत दस्तावेज है। उन्मुक्त शैली में नारी विमर्श के पटल पर ''वैदेही विद्रोह'' के माध्यम से आप एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में स्थापित है।

मोबाइल नम्बरः— 9425168628

अणु डाकः— drsvc22@gmail.com